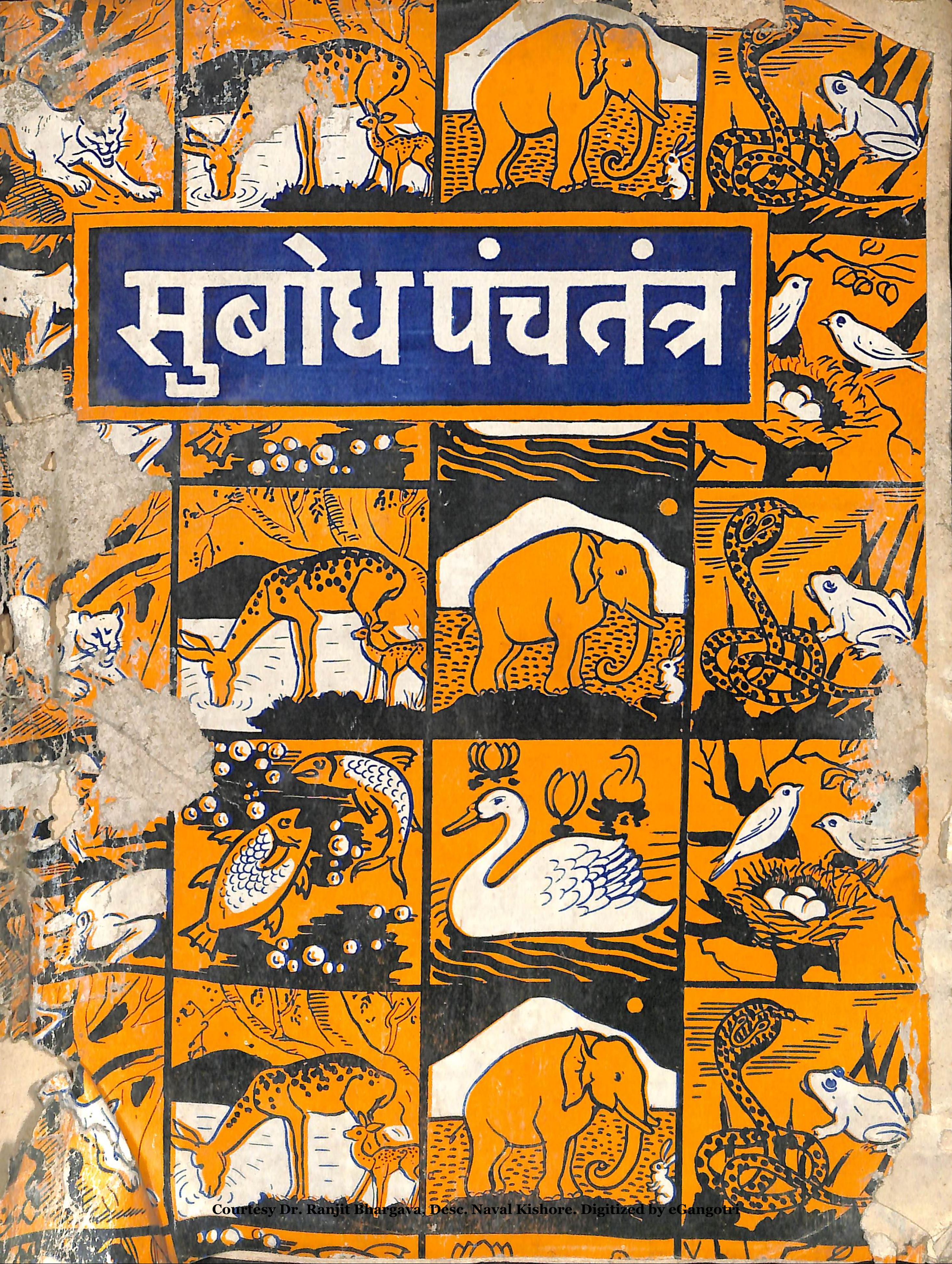
सुबोध पंचतंत्र



सुबोध पंचतंत्र

(द्वितीय भाग)

मूल लेखक—श्री विष्णुशर्मा

श्री लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, एम. ए. साहित्यरत्न

द्वारा

पुनर्कथित एवं संपादित

प्रकाशक

(राजा) रामकुमार प्रेस, बुकडिपो

उत्तराधिकारी

नवलकिशोर प्रेस,

लखनऊ

द्वितीय बार] १९६० ई० [मूल्य १॥)

श्री त्रिभुवननाथ धीर द्वारा
(राजा) रामकुमार-यन्त्रालय, लखनऊ में मुद्रित
सन् १९६० ई०

अपनी सहधर्मिणी श्रीमती लक्ष्मी देवी को जो मेरे लिए
'लक्ष्मी' तथा 'सरस्वती' दोनों की
साक्षात् मूर्त्ति हैं

और जिनका

इस पुस्तक के लेखन तथा संपादन में मुझे
पूर्ण बौद्धिक-सहयोग मिला

सप्रेम समर्पित

मेरा निवेदन

'पंचतंत्र' हमारे देश के संस्कृत-साहित्य की एक विख्यात पुस्तक है जिसमें पशु-पक्षियों की कहानियों द्वारा नीति एवं धर्म की शिक्षा दी गई है। यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि इस्लामी देशों तथा यूरोप के सभी देशों में इसके अनुवाद भी हुए और बाद में इसी के आधार पर अन्य कहानियाँ लिखी गईं। पशु-पक्षियों पर ढालकर रची हुई कहानियों की यह अमर पुस्तक हमारी वह पुस्तक है जो संसार को भारत की देन है—जिसके लिए संसार हमारा ऋणी है।

कहा जाता है कि इन कहानियों के लेखक श्रीविष्णुशर्मा ने इन्हें पाटलिपुत्र के राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए लिखा था। इन कहानियों में मनु, शुक, पराशर, व्यास, चाणक्य आदि हमारे जितने नीतिकार हुए हैं उनके नीति-शास्त्र का निचोड़ आ गया है। नीति के अतिरिक्त उनमें तत्कालीन भारत के जीवन की झाँकी भी मिलती है।

पंचतंत्र की इन्हीं कहानियों को मैंने इस पुस्तक में एक विशेष उद्देश्य से फिर से लिखा है और उनका संपादन किया है। इसमें मैंने न तो मूल पुस्तक की सभी कहानियाँ दी हैं और न उनका वही क्रम ही रक्खा है। ऐसा करने का मेरा अपना कारण है। दूसरी बात जो मैंने की है वह यह कि प्रत्येक कहानी को अपना एक स्वतंत्र रूप दे दिया है। मूल पंचतंत्र में एक कहानी के अंदर दूसरी और दूसरी के अंदर तीसरी कहानी इस प्रकार गुँथी हुई है कि पढ़ते-पढ़ते साधारण पाठक एक भूल-भुलैया सी में पड़ जाता है। गर्भ-कथा के समाप्त होने पर आगे चलकर जब फिर मूल कथा का प्रसंग आता है तो पाठक को उसका सिलसिला जोड़ने में असुविधा होती है। जिस श्रेणी के पाठकों के लिए मैंने इन कहानियों को चुना और फिर से लिखा है उनके लिए प्रत्येक कहानी का मार्ग सीधा और साफ करने का काम मैंने किया है। आशा है, विद्वानों को यह प्रयास पसंद आएगा।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात जो मैंने की है वह यह कि कहानियों के बीच-बीच में मूल पुस्तक में जो लंबी-लंबी नीतिशास्त्र की शिक्षाएँ आती थीं उन्हें मैंने बहुत ही संक्षिप्त कर दिया है। उसके स्थान पर मुख्य शिक्षा को कहानी के पहले या पीछे मूल संस्कृत श्लोक में देकर उसका अर्थ हिंदी में दे दिया है। ऐसा करके मैंने कहानी को स्वयं ही अपनी नीतिशिक्षा कहने के लिए छोड़ दिया है।

भारद्वाज

दीपावली संवत् २०१० वि०, लखनऊ

विषय-सूची

इक्कीसवीं कथा

सियार की चालाकी

जंगल में घूमते-घूमते एक दिन चतुर्दन्त नामक सियार को एक मरा हाथी मिला। अनेक प्रयत्न करने पर भी चतुर्दन्त हाथी की हड्डियाँ न फोड़ सका और न पेट की खाल ही काट सका, जिससे वह उसके शरीर का मांस खा पाता। वह अन्य उपाय सोच ही रहा था कि वहाँ एक सिंह आ पहुँचा। उसे देखते ही वह डर गया और हाथ जोड़कर बोला—आइए महाराज ! मैं आपके ही भोजन की रखवाली कर रहा हूँ।

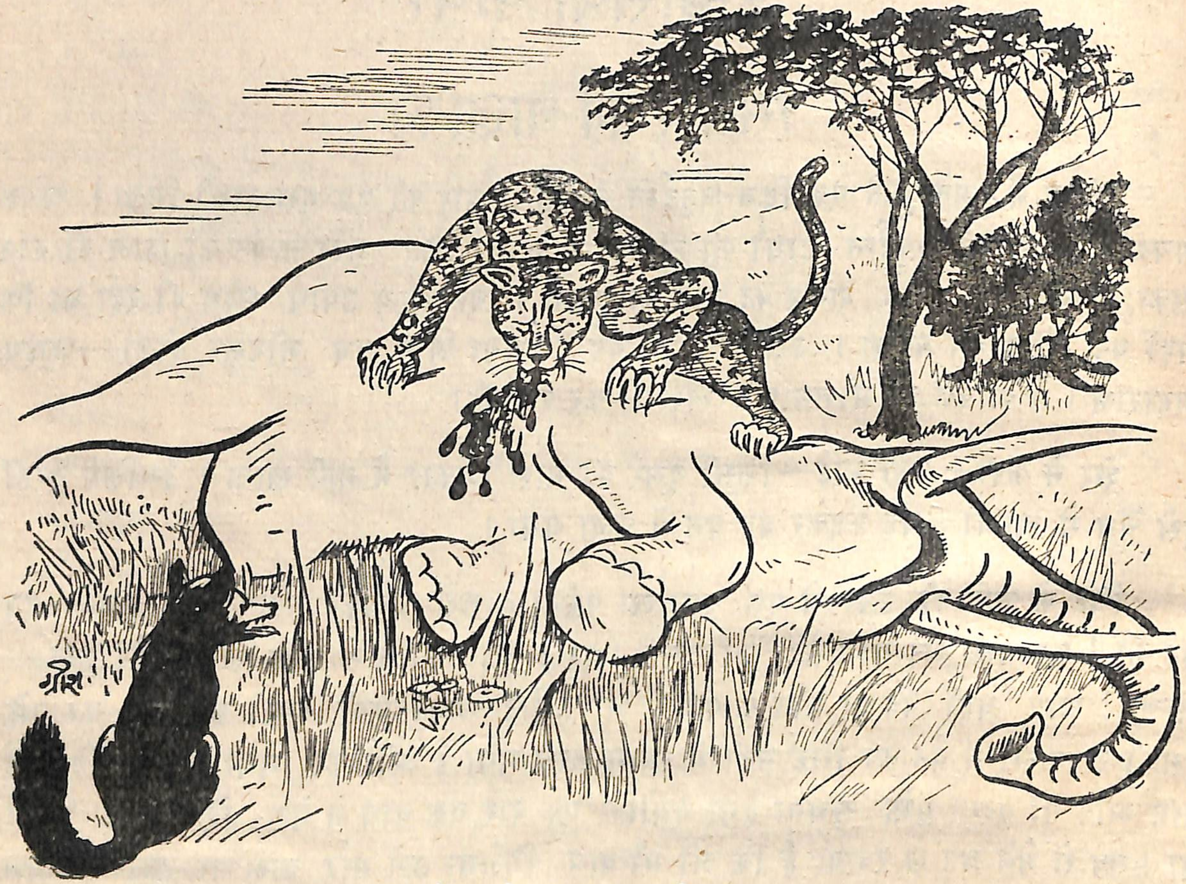
शेर ने कहा—नहीं भाई—किसी दूसरे का मारा शिकार मैं नहीं खाता। इसलिये तुम्हीं इसे चैन से खाओ। यह कहकर वह वन में चला गया।

सिंह के जाते ही उधर से एक बाघ आ पहुँचा। उसे देखकर सियार ने सोचा—हत् तेरे की ! एक बला गई तो दूसरी आ टपकी। परन्तु उसने नीति से काम लिया और कहा—चाचा ! आप यहाँ किधर मौत के पंजे में आ फँसे ? अभी-अभी हाथी को मार कर मुझे इसकी रखवाली में बैठाकर सिंह नदी में स्नान करने गया है और कह गया है कि यदि कोई बाघ आवे तो तुरन्त मुझे सूचना देना क्योंकि एक बार एक बाघ ने मेरा शिकार खा लिया था। तब से मैंने व्रत ले रक्खा है कि जो भी बाघ मिलेगा उसे मार डालूँगा और इस वन से उनका वंश ही समाप्त कर दूँगा। बाघ यह बात सुनते ही घबड़ाया और बोला—भाई ! तब तो मैं चला। कृपया उसे मेरा पता मत देना।

बाघ के चले जाने पर एक तेंदुआ वहाँ आया। सियार ने सोचा कि इसके दाँत मजबूत हैं, इसलिये इससे सहायता लेनी चाहिए। यह सोच उसे देखकर प्यार से बोला—आओ भतीजे ! कहाँ रहे इतने दिनों तक ? भूखे मालूम पड़ते हो, आओ ! देखो एक शेर इस हाथी को मार कर मेरी रखवाली में रख गया है, लगाओ भोग।

पर उसे शेर का शिकार समझकर तेंदुए ने उसे खाने से इन्कार कर दिया। सियार ने कहा—तुम खाओ; जैसे ही सिंह को देखूँगा तुम्हें आवाज लगा दूँगा। तुम भाग जाना।

तेंदुए ने उसे खाना शुरू किया। पर जैसे ही उसने खाल काटी थी कि शृगाल बोला— भागो-भागो, शेर आ रहा है। बस तेंदुआ जान लेकर वहाँ से तीर की तरह भागा। अब सियार ने आराम से मांस खाना शुरू किया। पर खाना शुरू करते ही एक दूसरा शृगाल



तेंदुए ने खाना शुरू किया।

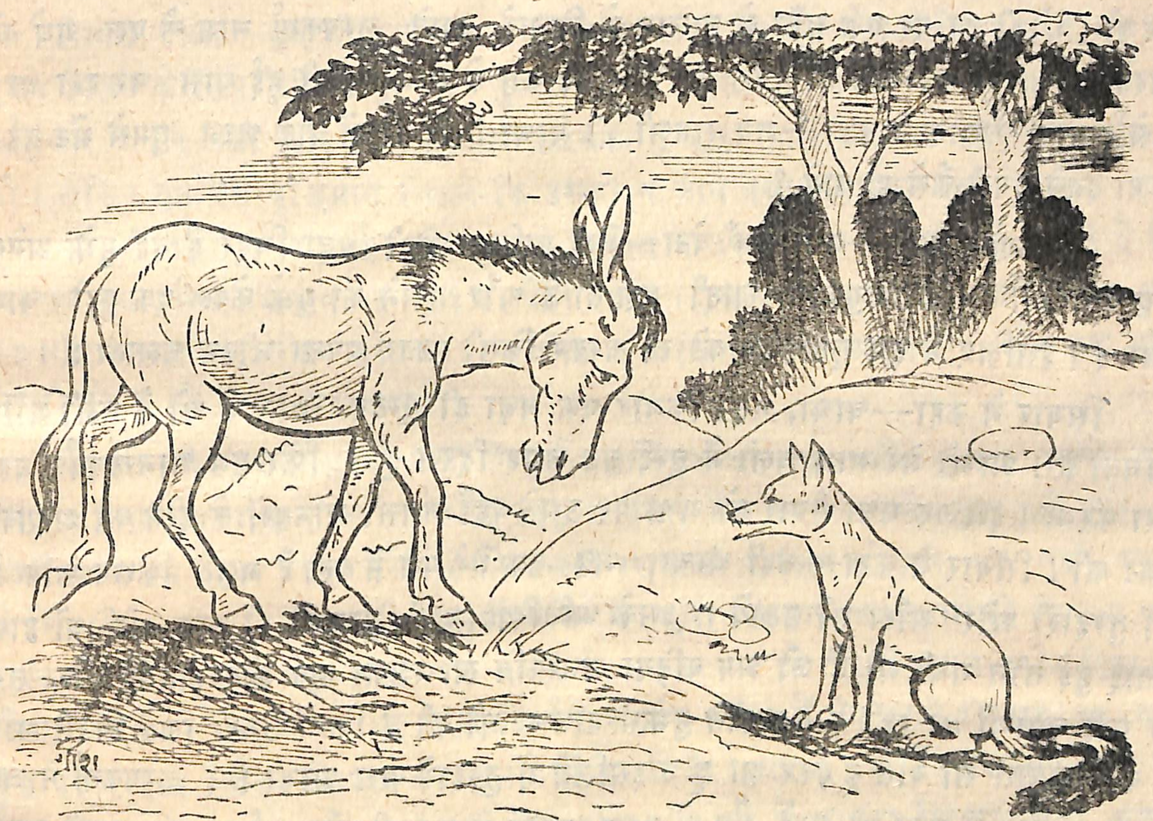
आ पहुँचा। उसे देखकर सियार ने सोचा यह तो बराबर का है इससे तो लड़ ही लेना चाहिए। यह सोचकर उसने दूसरे सियार पर आक्रमण करके उसे मार डाला और फिर चैन से हाथी का मांस खाया।

उत्तमं प्रणिपातेन शूरं भेदेन योजयेत्।
नीचमल्प प्रदानेन समशक्तिं पराक्रमैः॥

अर्थात्—श्रेष्ठ पुरुष को आदर करके, शूरवीर को भेद डालकर, नीचे को थोड़ा सा दान कर, तथा बराबर बलवाले को पराक्रम से जीतना चाहिए।

बाईसवीं कथा

हृदय तथा कर्ण-विहीन गधा



आगतश्च गतश्चैव दृष्ट्वा सिंहपराक्रमम्।
अकर्णहृदयो मूर्खो यो गत्वा पुनरागतः ॥

अर्थात्—जो सिंह (शत्रु) के पराक्रम को देखकर आया तथा गया तदपि शत्रु के पास पुनः आ गया वह कर्ण तथा हृदय-रहित मूर्ख है।

करुण केसर नामक सिंह, अपने धुसारक नामक शृगाल अनुचर के साथ एक वन में रहता था।

एक बार किसी हाथी से लड़ते हुए सिंह को अधिक चोट आ गई जिसके कारण वह

चलने फिरने के योग्य भी न रहा। सिंह के बेकार हो जाने से धुसारक की जान पर आ बीती। भूख के मारे कुछ ही दिनों में वह सूखकर काँटा हो गया। विवश होकर उसने सिंह से कहा—महाराज! भूख के कारण मैं अत्यन्त ही दुर्बल हो गया हूँ। यदि यही दशा रही तो फिर मैं आपकी सेवा करने के योग्य भी न रह जाऊँगा। इस पर सिंह ने कहा कि यदि वह किसी जानवर को ढूँढ़ कर बता दे तो वह इस हालत में भी उसका शिकार कर देगा। अपने को किसी प्रकार घसीटता हुआ शृगाल शिकार की खोज में वहाँ से चल दिया। थोड़ी दूर पर एक गाँव के तालाब के किनारे उसने लम्बकर्ण नाम के एक गधे को चरते देखा। वह अत्यन्त ही दुर्बल था और बड़े कष्ट के साथ सूखी हुई घास चर रहा था। उसे देखकर शृगाल ने कहा—जय रामजी की चाचा! बड़े दिनों बाद आज तुमसे भेंट हुई। भला इतने दुबले कैसे हो गये?

लम्बकर्ण ने कहा—क्या करूँ बेटा—मेरा मालिक धोबी बड़ा निठुर है वह मुझे अनेक कष्ट देता है। तमाम तो मुझसे लादी ढुलाता है और खाने को मुझे केवल एक मुट्ठी चारा देता है। इसलिए मैं इस सूखी दूब को ही चरकर किसी प्रकार अपना जीवन चलाता हूँ।

सियार ने कहा—चाचा, नदी किनारे एक बड़ा ही सुन्दर स्थान है जो मैं भली भाँति जानता हूँ। आओ मेरे साथ चलो मैं तुम्हें वह जगह दिखा दूँ। फिर तुम आनन्दपूर्वक वहाँ चरा करना। इस पर गधा तैयार हो गया पर उसने वहाँ जंगली जानवरों के होने की आशंका प्रकट की। सियार ने कहा—नहीं चाचा, जब तक मेरे पंजे में बल है भला किसमें शक्ति है जो तुम्हारी ओर आँख भी उठाये। इसके अतिरिक्त वहाँ तुम्हारी ही तरह धोबियों द्वारा सताई हुई तीन गधी भी हैं जो अब बढ़िया वनस्पति खा खाकर खूब मोटा गई हैं और उन पर पूरी जवानी छा रही है। उन्होंने मुझसे प्रार्थना भी की है कि मैं उनके लिये किसी गाँव से कोई अच्छा सा पति ढूँढ़कर ला दूँ। इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। लम्बकर्ण ने जब गर्दभी के बारे में सुना तो मारे प्रेम के उसके शरीर में फुरहरी दौड़ गई। वह तुरन्त उसके साथ चल दिया। किसी ने ठीक कहा है—प्रेम तथा काम अंधा बना देता है।

बेचारा मूर्ख गधा, सियार की बातों में आकर निशंक होकर सिंह के सामने पहुँच गया। किन्तु सिंह उसको देखकर महान् मूर्खता कर बैठा। शिकार को देखकर वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसको अपनी छलाँग का ध्यान न रहा और इतनी जोर से छलाँग लगाई कि बजाय गधे पर गिरने के वह उसके दूसरी तरफ जाकर गिरा। इस घटना से गधा घबरा गया और अपनी जान बचाकर एकदम वहाँ से भाग गया। यह देखकर सियार ने कहा—वाह महाराज! आपने तो आज कमाल ही कर दिया। हाथ में आया हुआ भोजन निकल गया।

सिंह अपनी इस मूर्खता पर बहुत लज्जित हुआ और कहा—भाई, चोट के कारण मैं अपनी इच्छानुसार छलाँग न मार सका। भला आज के अतिरिक्त भी तुमने कभी मेरी छलाँग असफल होते देखी है। सदा एक ही छलाँग में मैं बड़े से बड़े हाथी को फाड़ डालता हूँ। सियार ने कहा—अच्छा कोई बात नहीं, मैं अब की उसे फिर लाता हूँ। पर इस बार सावधानी से काम लीजिएगा। इतना कहकर वह फिर गधे के पास गया। उसे देखकर गधे ने कहा—अच्छा स्थान दिखलाया, बेटा! मुझे अपनी जान ही बचाना कठिन हो गया।

सियार बोला—तुम भी कमाल करते हो चाचा! वह तो एक प्रेम-पीड़िता गधी थी जो तुमसे मिलने के लिए अति आतुर थी। तुम्हारी सूरत देखकर वह अपनी भावनाओं पर अपना अधिकार न रख सकी और उसने एकाएक उछलकर तुम्हारा आलिंगन कर लेने की कोशिश की। लेकिन तुम ऐसे बुद्धिमान् निकले कि उसको न जाने क्या समझकर वहाँ से भाग खड़े हुए। बेचारी तड़प कर रह गई। अब तुम्हारे वियोग में उपवास किये बैठी है। कहती है कि जब तक तुम उसे न मिलोगे वह ऐसी ही बैठी रहेगी। उस पर कृपाकर चले चलो और उसे एक बार समझा दो। फिर लौट आना क्योंकि प्रेम बिना जीवन अपूर्ण है। प्रेम का भूखा वैरागी होकर भी सन्तुष्ट नहीं रहता।

सियार की चिकनी-चुपड़ी बातों में मूर्ख गधा फिर आ गया और दुबारा उसके साथ सिंह के पास चला गया। इस बार सिंह पहले से तैयार बैठा था। उसने तुरन्त ही गधे का काम तमाम कर दिया। फिर सियार को उसकी रखवाली के लिए छोड़कर वह नदी स्नान के लिये चला गया। सिंह की अनुपस्थिति में भूखा सियार अपने सामने शिकार पड़ा देखकर अपनी भूख न रोक सका और जल्दी से उसने गधे के दोनों कान और दिल खा लिया। लौटकर सिंह ने जब यह देखा कि गधे के अंग गायब हैं तब उसने सियार पर बहुत क्रुद्ध होकर पूछा कि तूने शिकार को जूठा क्यों कर दिया। अब मैं उसे कैसे खा सकता हूँ।

सियार ने कहा—महाराज! भला मेरी क्या शक्ति जो मैं आपका शिकार जूठा करूँ। शेष रही कानों और दिल की बात, वह तो महाराज इस गधे के थे ही नहीं। यदि इस मूर्ख के पास दिल और कान होते तो एक बार आपसे बचकर लौट जाने पर यह दुबारा लौट कर आपके पास नहीं आता।

एक विपत्ति से बचने पर भी जो उसी स्थान पर पुनः जाता है दुनिया में उसके समान मूर्ख कोई नहीं है।

शेर को उसकी बात पर विश्वास हो गया, फिर दोनों ने बाँटकर प्रसन्नता-पूर्वक भोजन किया।

———

तेईसवीं कथा

कौवे और उल्लू की कथा



न विश्वसेत्पूर्वविरोधितस्य शत्रोश्च मित्रत्वमुपागतस्य।
दग्धां गुहां पश्य उलूकपूर्णां काकप्रणीतेन हुताशनेन ॥

अर्थात्—पुराना शत्रु यदि मित्र बनकर आये तो उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। कौए ने उल्लुओं की गुफा को इसी भाँति अग्नि से जला दिया।

दक्षिण में पतालपुर नामक नगरी के निकट एक विशाल वट-वृक्ष अपनी अगणित भुजाएँ फैलाये खड़ा है। उसी वट-वृक्ष में मेघ नामक एक कौवों का राजा अपनी अगणित सेना और परिवार के साथ रहता था।

उसी का एक शत्रु मर्दन नामक उल्लुओं का राजा भी अपने अगणित अनुचरों के साथ पर्वत की एक कन्दरा में रहता था। उसे कौवों से हार्दिक घृणा थी, इसलिए वह जहाँ भी कौवों को देखता, मार डालता था। प्रायः वह उस वट-वृक्ष पर भी आक्रमण कर देता था और इस प्रकार उसने अगणित कौवों को यमलोक पहुँचा दिया था।

उसके इस कार्य से मेघ बहुत दुखी हुआ और इस आपत्ति से बचने के लिये अपने मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा की। उसने अपने मंत्रियों से कहा कि उल्लुओं का राजा सदैव रात्रि ही के समय आकर हम पर हमला करता है, जब कि हम उसे देख भी नहीं सकते। न हमें उसके निवास-स्थान का ही पता है जो हम भी उसके दुर्ग पर दिन के समय हमला करके बदला ले सकें। हमारे सामने ६ उपाय हैं--(१) शान्ति (२) युद्ध (३) स्थान-परिवर्तन (४) दुर्गबन्दी (५) संधि (६) कूटनीति।

ज्ञानी पुरुष विपत्तियों से बचने के लिए अच्छी युक्ति का प्रयोग करते हैं। इस कारण अब आप लोग मुझे उचित परामर्श दें कि हम कौनसा उपाय करें जो इस विपत्ति से निर्वाण पावें।

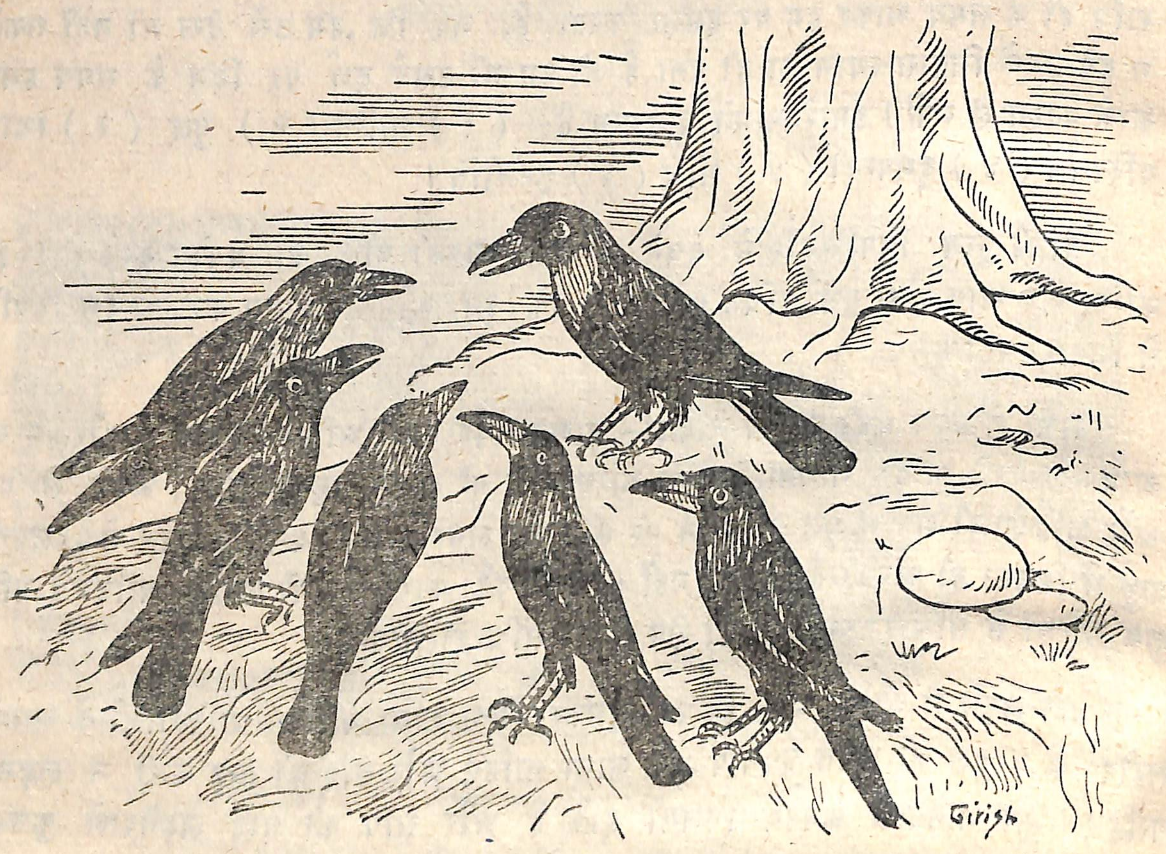
राजा के प्रथम मंत्री उज्जीव ने कहा—राजन्! वह हमसे अधिक बलवान् है और हम पर आक्रमण करने का ढंग जानता है। इस कारण विद्वानों के कथनानुसार हमको अपने से बड़े और शक्तिशाली शत्रु से युद्ध के स्थान पर संधि कर लेना चाहिए, क्योंकि अपने से बलवान् शत्रु से मित्रता ही अच्छी है, शत्रुता नहीं। दुष्टों की छाया से भी बचना चाहिए। यदि कुछ शत्रुओं से संधि हो जाती है तो शेष से भी संधि हो जायगी।

जहाँ लड़ने से कोई लाभ न हो वहाँ भूलकर भी न जाना चाहिए। शक्तिशाली के सामने सरोवर के नरकुल की भाँति चुपचाप झुक जाना चाहिए और साँप की तरह कभी न लड़ना चाहिए। झुक जानेवाले अवश्य विजयी होते हैं और साँप की तरह लड़नेवाले कुचल दिये जाते हैं।

मेघ ने तब संजीवी से पूछा कि तुम्हारी क्या राय है। उसने उत्तर दिया—निर्दयी, लालची और अनीतिवान् शत्रु से कभी भी संधि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जो नियम तथा धर्म को नहीं मानता वह कपटी संधि को कब मानेगा। इसलिये मेरे विचार से तो उससे एक बार लड़ लेना ही अच्छा है क्योंकि नये उत्पन्न होते शत्रु का उन्मूलन करना सुगम है।

शत्रु के प्रति उदार होने से उसमें उद्दण्डता और दृढ़ता पैदा होती है। ज्वर के उतारने के लिए जुलाब ही अच्छा होता है। बार-बार शत्रु को समझाने के बाद उसके प्रति मौन धारण कर लेना गरम तवे पर पानी की एक-एक बूँद डालने के समान है। जब निर्दयता और अत्याचार के प्रति कमर कस ली तो फिर शक्तिमान् और शक्तिहीन क्या! चेष्टा करने से

छोटा बड़े को भी जीत लेता है जैसे सिंह हाथी को। युक्ति से बड़ा शत्रु भी सरलतापूर्वक मारा जा सकता है। भीम ने स्त्री के वेश में कीचक का वध कर दिया था।



मेघ नामक कौवे का अपने मंत्रियों से मंत्रणा करना

तीसरे मंत्री प्रजीव से पूछे जाने पर उसने कहा—क्योंकि हमारा शत्रु हमसे शक्तिशाली और चालाक है, इसलिये हमारे लिये स्थान-परिवर्तन कर देना ही उचित है। क्योंकि जिस स्थान पर दुष्टों के आने-जाने से बाधा पहुँचती है उसका त्याग देना ही उत्तम है।

आक्रमण तो सदैव अवसर देखकर ही करना चाहिए व्यर्थ प्राण गँवाने से तो भाग जाना कहीं उत्तम है।

चौथे मंत्री चिरञ्जीवी ने गृह त्यागने की राय को अस्वीकार किया और कहा—अपने घर में तो मगर एक बड़े-से-बड़े हाथी को आसानी से मार सकता है किन्तु जल के बाहर एक तुच्छ कुत्ता भी उसे पछाड़ सकता है। शत्रु जब हमारे छोड़े हुए स्थान पर अधिकार कर लेता

है तो फिर अपने स्थान को दुबारा जीतना बड़ा ही कठिन हो जाता है। इसलिये हमें उसके विरुद्ध दुर्गबन्दी कर लेनी चाहिए।

पाँचवें मंत्री मृत्युञ्जय ने शत्रु के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बाँधने की राय दी और कहा—शक्तिशाली की सभी सहायता करते हैं तथा निर्बल को पीड़ा देते हैं।

इसके बाद मेघ ने अपने यहाँ के सबसे वृद्ध और बुद्धिमान् कौवे से, जो राजनीति के सम्पूर्ण अंगों में पटु था, जिसका नाम चिरंजीवी था, पूछा और कहा--पिताजी, आपके सम्मुख इन सबसे परामर्श करने का मेरा तात्पर्य यह था कि आप इन सबकी राय सुनकर जो सबसे उचित राय हो, वही सोचकर मुझे दें।

उसने कहा—मेरे बच्चे, इन लोगों ने जो कुछ कहा अपनी-अपनी जगह बिलकुल ठीक हैं, किन्तु इस समय कूटनीति की आवश्यकता है। शान्ति तथा युद्ध के मार्ग को त्यागकर कूटनीति के मार्ग पर चलना ही श्रेयस्कर है।

जिस प्रकार से भी हो सके हमें अपने शत्रु का विश्वास जीतना चाहिए और इसी रीति से सदा विजय प्राप्त होती है।

नीति से काम लेना ही इस समय बहुत आवश्यक है और जब हम उसकी कोई निर्बलता जान लें तब उससे बदला लें। मेघ ने कहा--जब हम उसका निवास-स्थान ही नहीं जानते तो फिर निर्बलता का पता कैसे पायेंगे।

चिरंजीवी ने कहा--गुप्त रूप से मैं स्वयं उसके निवास-स्थान और दुर्बलता का पता लगाकर तुमको बताऊँगा क्योंकि गुप्तचर ही राजा के नेत्र होते हैं।

राजा के गुप्तचर दूसरे राजा का सम्पूर्ण भेद तथा उसके कर्मचारीगण के बारे में पता लगा लेते हैं, इसके बाद फिर उस राजा का जीतना सरल हो जाता है।

मेघ ने पूछा—यह कर्मचारीवर्ग क्या है?

उसने कहा—राज्य का सारा कार्य कर्मचारियों में बँटा रहता है, जो अपने अपने काम के उत्तरदायी होते हैं। यदि कार्य सुचारु रूप से नहीं होता तो राजा का पतन हो जाता है और यदि काम ठीक होता है तो राज्य की खूब उन्नति होती है।

मेघ ने पूछा—कृपया यह तो बताइए कि उल्लुओं और कौवों में इस घोर शत्रुता का कारण क्या है ?

उसने कहा—एक बार हंस, सारस, तित्तिभक, बगुले, अवाबील, मोर, उल्लू, हुदहुद, कबूतर, तीतर, नीलकण्ठ, गिद्ध, गरगइये, कोयल, तोता, मैना, कुक्कुट, बटेर, चकोर, आदि सभी पक्षी एक निश्चित स्थान कर एकत्रित हुए और आपस में परामर्श करने लगे—हम पक्षियों के राजा गरुड़ विष्णु भगवान् की सेवा में इतने तल्लीन रहते हैं कि वे हम लोगों के दुःख-सुख की तनिक भी चिन्ता नहीं करते तथा दिन-रात अपने में ही भूले रहते हैं। कार्य तो दूर दर्शन भी दुर्लभ है।

फिर क्यों न हम अपना एक दूसरा नृप चुन लें। क्योंकि जो स्वार्थी राजा हमें विपत्ति में छोड़ देता है उसकी सेवा करना हमारी मूर्खता है।

लोकोक्ति है कि निम्नलिखित छः वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए—

(१) ऐसे गुरु का जिससे कभी शिक्षा प्राप्त न हो सके।

(२) ऐसे पुजारी का जो धर्म के नियमों को त्याग चुका हो।

(३) ऐसे राजा का जो प्रजा की रक्षा न करता हो।

(४) ऐसी स्त्री जो कटुभाषी हो।

(५) ऐसा चरवाहा जो सदैव नगर जाने के स्वप्न देखता हो।

(६) ऐसे नाई का जो अत्यन्त लालची हो।

इस प्रकार से उन्होंने एक नवीन राजा चुन लेने का परस्पर निश्चय कर लिया। और राजा बनाने के लिये अपनी समझ में उन्होंने उल्लू को सर्वश्रेष्ठ समझा क्योंकि उसका आकार प्रभावशाली था।

तुरन्त ही राजतिलक की तैयारियाँ होने लगीं। समस्त पवित्र नदियों का जल मँगवाया गया। १०८ वनस्पतियों (औषधियों) की जड़ों का एक गुच्छा बनाया गया। एक स्थान पर स्वर्ण का सिंहासन, जिस पर व्याघ्रचर्म बिछे हुए थे, रक्खा गया। भूमि पर चारों सागरों, सप्त महाद्वीपों का मानचित्र बनाया गया। पाँच स्वर्णकलशों में पवित्र नदियों का जल राजतिलक से पूर्व राजा के स्नान के लिये लाया गया। पंचफूल तथा पंचपल्लव और ब्राह्मणों की दक्षिणा एकत्रित की गई। समस्त पक्षिगण विरुदावली गाने लगे और ब्राह्मण

वेदमंत्र पढ़ने लगे। नव बालायें नाचने और गाने लगीं। तिल, चावल, पीले चावल, गोरोचन, शंख और हार आदि तैयार किये गये। कपूरयुक्त आरती का थाल चारों ओर घुमाया गया। नगाड़ों की ध्वनि गूँजने लगी। उल्लू तथा उसकी पत्नी कृकालिका तिलक से पूर्व स्नान की प्रतीक्षा में बैठे थे। तभी आकाश में उड़ते हुए एक कौवे की कर्कश काँव-काँव ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने अपने मन में सोचा आज कौन सा ऐसा पर्व है जिसके कारण समस्त पक्षिगण एकत्रित हुए हैं।

कौवा को देखकर अन्य सब पक्षियों ने कहा—हम पक्षियों में कौवा ही सबसे अधिक बुद्धिमान् और धूर्त पक्षी है। लोकोक्ति है—पक्षियों में काग, चौपायों में सियार, साधुओं में श्वेताम्बर साधु सबसे अधिक चालाक होते हैं। इसलिये राजतिलक से पहले इसकी राय भी ले लेनी चाहिए क्योंकि बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय।

कौवे ने उन लोगों से समस्त पक्षियों के एकत्रित होने का कारण पूछा तो उन लोगों ने अपनी सारी बातें कहीं और अपने नृप-निर्वाचन के बारे में भी राय पूछी। कौवे ने मुस्कराकर कहा—जब तुम लोगों में राजहंस, मोर, कोयल, चकोर, शुक, हंस, सारस, कबूतर जैसे सुन्दर और बुद्धिमान् पक्षी उपस्थित हैं तब भला एक ऐसी भयंकर आकृतिवाले को क्यों अपना राजा बनाया। वह दिन को अन्धा भी हो जाता है। मुझे तो यह चुनाव अच्छा नहीं लगता। बिना क्रोध के तो इसका चेहरा इतना भयंकर है, फिर भला क्रुद्ध होने पर क्या हाल होगा। ऐसे को राजा बनाने से हमारी कौन सी समृद्धि होगी? अथवा लाभ होगा। यदि इसमें सम्पूर्ण राजोचित गुण भी हों तो भी महाराज गरुड़ के रहते हुए हमें दूसरा नृप चुनने का कोई अधिकार नहीं। जब एक राजा मौजूद हो दूसरा कभी न चुनना चाहिए। राज्य का भला एक-छत्र के अन्तर्गत रहने ही से होता है, टुकड़ों में नहीं। कई राज्य मिलकर राज्य का विनाश कर देते हैं। गरुड़ का तो केवल नाममात्र ही लेने से तुम्हारे रिपु भाग जावेंगे। कहावत है—विपत्ति में किसी बड़े का नाम लेने मात्र ही से विपत्ति टल जाती है। केवल नाम लेकर ही बड़े-बड़े कार्य सफल हुए हैं।

कौवे की बातें उन लोगों को बहुत अच्छी लगीं और सबके सब उड़-उड़कर अपने घर चले गये। वहाँ केवल उल्लू और उसकी कृकालिका ही रह गये। वह तेल, उबटन, स्नान आदि की प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतीक्षा से ऊब कर उल्लू ने पुकारा—अरे कोई है, इस शुभ कार्य में देरी क्यों हो रही है? तब कृकालिका ने उसे सारा हाल बताया और घर चलने की राय दी। इस पर उल्लू ने क्रुद्ध होकर कहा—अरे, नीच आज तूने मेरे रंग में भंग डाला।

अच्छा आज से तेरी और मेरी शत्रुता हो गई क्योंकि अपमानित होकर सभी शत्रु बन जाते हैं।

इस कारण से उल्लुओं में और हममें पुराना वैर है। मेघ ने कहा—तो फिर ऐसी परिस्थिति में हमें क्या करना चाहिए ?

चिरञ्जीवी बोला—एक युक्ति है जो मैं स्वयं करूँगा। मैं उन्हें धोखा देकर विकट परिस्थिति में फँसा दूँगा। झूठे प्रेम में फँसाकर मैं शत्रुओं का दमन करूँगा।

तुम मुझे झूठमूठ की मारपीट कर, मेरे शरीर से नकली रक्त लगाकर, मुझे त्याग कर कुछ समय के लिये नाग पर्वत की कन्दराओं में जाकर वास करो और इसी बीच में कूटनीति द्वारा शत्रुओं से मैत्री करके मैं उनके किले आदि का पता लगाकर फिर उन्हें मार डालूँगा। तुम्हें इस बारे में मेरी तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिए।

ऐसा कहकर उसने झूठमूठ की लड़ाई राजा के साथ आरम्भ कर दी। राजा ने जैसा तय हो चुका था, झूठमूठ उसके शरीर में रक्त आदि लगाकर उसे मारपीट कर छोड़ दिया और नाग पर्वत की ओर अपने समस्त अनुचरों सहित चला गया।

इस अवसर पर उल्लुओं का एक गुप्तचर वहाँ यह देख रहा था। उसने तुरन्त अपने राजा को यह समाचार दिया जिसको सुनकर वह अपने अनुचरों को लेकर वहाँ आ पहुँचा पर तब तक सारे कौवे भाग चुके थे और वह स्थान खाली था।

चिरञ्जीवी ने, जो इस अवसर की ताक में था, तुरन्त जोर से कराहना शुरू किया। उल्लू उसे मारने को झपटे पर उसने कहा—मित्रो, मैं कौवों के राजा का प्रधान मंत्री चिरञ्जीवी हूँ और राजा ने ही मेरी यह हालत की है। मैं आपके महाराज से बात करना चाहता हूँ। कृपया उन्हें खबर दीजिए। उलूकराज यह सुनते ही वहाँ आया और उससे सारा हाल पूछा। इस पर कौवे ने कहा—कल दुष्ट मेघराज आपके किले पर आक्रमण करने तथा आपसे बदला लेने के विचार से चलने ही को था। किन्तु मैंने उसे समझाया कि उलूकराज आपसे शक्तिमान् हैं। आपको अपने से अधिक शक्तिशाली से नहीं लड़ना चाहिए। बलवान् शत्रु से लड़ना पतिंगे का अग्नि में कूदना है।

इससे तो भला होगा कि आप उनसे संधि कर लें। यह सुनते ही वह मुझ पर टूट पड़ा और मेरी यह हालत की। अब मैं आपकी शरण हूँ, जैसे ही मैं चंगा हो जाऊँगा, आपको

उसके रहने का ठिकाना ढूँढ़कर बता दूँगा। तब आप उसका जड़-मूल से नाश कर दीजिएगा।

उलूकराज ने अपने पंचमंत्रियों से राय ली। जिस पर प्रथम रक्तनेत्र ने कहा--दुर्बल शत्रु का भी नाश कर देना चाहिए अन्यथा वह अवकाश पाते ही चोट करेगा।

दूसरे क्रुद्धनेत्र ने कहा—शरणागत को मारना महापाप है।

तीसरे ज्योतिनेत्र ने कहा—उचित कार्य से चूक जाने पर पश्चात्ताप ही करना होगा।

चौथे मंत्री शुकनाथ ने कहा--नम्र से नम्र शत्रु से भी बचना चाहिए क्योंकि अवसर पाकर वह आक्रमण कर बैठता है।

पाँचवें मंत्री विशाल ने कहा—इसे कभी मत मारिये, सम्भवतः यह कभी किसी काम में आ जाय।



शरणागत को मारना महापाप है

रक्तनेत्र के अत्यन्त विरोध करने पर भी उलूकराज चिरंजीवी को अपने स्थान पर ले गया और चरों को आज्ञा दी कि जो स्थान यह पसन्द करे इसे रहने को दिया जाय और इसकी सेवा-शुश्रूषा करके इसे जल्दी से जल्दी आरोग्य किया जाय। कौवे ने सोचा कि इन लोगों का नाश करने के लिए यह आवश्यक है कि मैं ऐसी जगह रहूँ, जहाँ से आसानी

से इनका भेद ले सकूँ और अवसर पाकर अपना काम भी कर लूँ तथा यह लोग मेरा भेद ले न सकें। ऐसा सोचकर उसने बाहरी फाटक के पास रहने की इच्छा प्रकट की और उलूकराज से कहा—महाराज! आपकी कृपा के लिए धन्यवाद। आप कृपया मुझे इस द्वार के पास ही पड़े रहने का स्थान दे दीजिए। इससे कम से कम नित्य आते-जाते आपके दर्शन तो इस दास को मिलते रहेंगे।

राजा ने इस बात को स्वीकार कर लिया और कौवा वहीं रहने लगा। इधर अपने राजा की आज्ञानुसार उलूकों ने कौवे को माल खिला-खिलाकर खूब तगड़ा कर दिया। यह सब देखकर रक्तनेत्र ने अपने राजा तथा अन्य मन्त्रियों को बहुत समझाया और कहा कि आप सब मिलकर क्या अनर्थ कर रहे हैं क्योंकि शत्रु को घर में रखकर बलवान् बनाना मृत्यु को बुलाना है।

किन्तु उसके कहने का कोई प्रभाव नहीं हुआ। तब उसने अपने सारे मित्रों को बुलाकर उनसे कहा कि हमारे राजा और उनके मंत्रियों का मस्तिष्क फिर गया है। लाख समझाने पर भी वे घर में बैरी को टिकाये हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में हम लोगों को अपनी जान बचाकर यहाँ से चल देना चाहिए। उन्हें इस प्रकार समझाकर तथा साथ लेकर वह वहाँ से चल दिया। यह देखकर कौवा बहुत प्रसन्न हुआ और साथ ही साथ उसने रक्तनेत्र की बुद्धि की मन ही मन प्रशंसा की तथा सोचा कि चलो अब मेरा कार्य सुगम हो गया। इस प्रकार से विचार कर उसने जंगल से नित्य सूखी लकड़ी के टुकड़े लाकर अपने घोंसले में डालना शुरू कर दिये। इससे उसका उद्देश्य समस्त उल्लुओं को जलाकर मार डालने का था। उसकी इस चाल को मूर्ख उल्लूगण न समझ सके। कहावत है कि मित्र को शत्रु तथा शत्रु को मित्र नहीं बनाना चाहिए क्योंकि दोनों से हानि ही होती है।

इस प्रकार घोंसला बनाने के बहाने उसने उल्लुओं के किले के फाटक पर एक बड़ा भारी लकड़ी का ढेर जमा कर दिया। प्रातः होते ही जब सब उल्लू देखने से लाचार हो गये वह मेघ के पास जा पहुँचा और उसे तुरन्त चलने को कहा। मेघ ने चलने से पहले उससे सारा हाल जानना चाहा पर उसने कहा—शुभ कार्य में शीघ्रता ही करनी चाहिए अन्यथा हाथ मलना पड़ता है।

यह सुनकर मेघ तुरन्त अपने साथियों सहित जलती मशालें लेकर उल्लुओं के निवास-स्थान पर जा पहुँचा और उस लकड़ी के ढेर में आग लगा दी। कुछ क्षण ही में समस्त उल्लू जलकर भस्म हो गये। इस प्रकार कौवों ने अपना बदला ले लिया।

चौबीसवीं कथा

अंधा प्रतिशोध

किसी कुएँ में गंगदत्त नामक एक मेढ़क राजा रहता था। अपने कुछ साथियों द्वारा अपमानित और दुखी होकर वह पानी की चरखी की बालटियों द्वारा उस कुएँ के बाहर निकल आया। बाहर निकलकर उसके मन में अपने सम्बन्धियों से प्रतिशोध लेने की भावना जगी और वह इसके उपाय सोचने लगा—जो शत्रु से अपमान का बदला नहीं चुकाता उसका जीवन निष्फल है।

जब वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसे एक साँप दिखाई दिया। उसे देखकर उसने तुरन्त सोचा कि क्यों न इसे ही अपने प्रतिशोध का साधन बनाना चाहिए और अपने सम्बन्धियों का सफाया करा देना चाहिए।

शत्रु के द्वारा ही शत्रु का नाश कराना चाहिए।

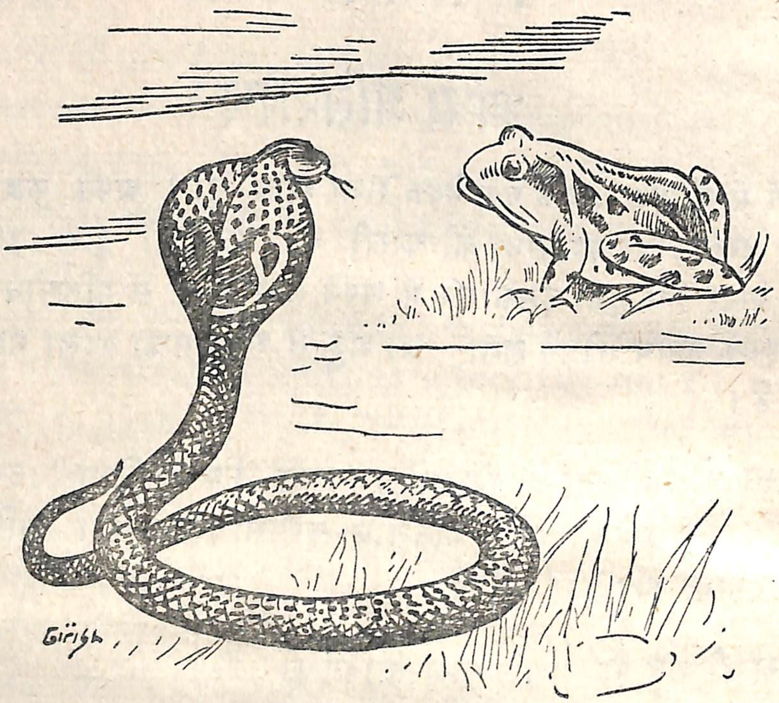
ऐसा सोचकर वह साँप के बिल के पास पहुँचा और उसे बाहर बुलाया। साँप ने उसका अपरिचित स्वर सुनकर अपने मन में सोचा—न तो यह मेरा जाति-भाई है और न मेरा मित्र, फिर भला यह कौन है? बिना ठीक पता लगाये बाहर सिर निकालने में हानि की सम्भावना है। चरित्र तथा स्वभाव का ज्ञान हुए बिना किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए। इसलिए उसने अन्दर ही से पूछा कि तुम कौन हो?

मेढ़क ने कहा—मैं गंगदत्त हूँ मेढ़कों का राजा, आपसे मित्रता करने आया हूँ। साँप ने कहा—यह असम्भव है, घास कभी आग से दोस्ती नहीं कर सकती। मेढ़क बोला—मैं जानता हूँ कि आप मेरे स्वाभाविक शत्रु हैं, फिर भी मैं आपके पास आया हूँ। इसका कारण यह कि मुझे मेरे सम्बन्धियों ने अपमानित किया है। जब जीवन संकट में पड़ जाता है तब बुद्धिमान् भी सर्प की पूँछ पकड़ लेते हैं।

साँप ने पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है?

कुएँ में––मेढ़क बोला।

वहाँ तो मैं पहुँच भी नहीं सकता, और यदि किसी प्रकार पहुँच भी जाऊँ तो मैं रहूँगा कहाँ ? जब तक मुझे भली प्रकार विश्राम नहीं मिलेगा, मेरा स्वास्थ्य खराब हो जायगा। स्वास्थ्य ही विश्व में सर्वश्रेष्ठ धन है।



तुम्हारा घर कहाँ है

इसकी आप तनिक चिन्ता न कीजिए। आपके रहने के लिए भी मेरे पास प्रबन्ध है। वहाँ आप बड़े आराम से रह सकते हैं।

बहुत कुछ टाल-मटोल के बाद साँप उसके साथ गया, किन्तु कुएँ के अन्दर जाने से पहले गंगदत्त ने साँप से कहा—देखिए! रास्ता तो चलने का मैं अभी बताये देता हूँ किन्तु आप मुझे वचन दीजिए कि आप मेरे कुटुम्ब को और मुझको कोई हानि न पहुँचावेंगे।

साँप ने कहा—जब मेरी और तुम्हारी मित्रता ही हो गई तो फिर ऐसा नीच कर्म मैं कैसे कर सकता हूँ। इस बात से तुम निश्चिन्त रहो।

गंगदत्त उसे कुएँ में ले गया और रहने का ठिकाना बता दिया। कुछ ही दिनों में साँप ने उसके सारे सम्बन्धियों का सफाया कर दिया। तब उसने कहा—मित्र गंगदत्त, मैंने तुम्हारे सारे शत्रु साफ कर दिये, अब तुम मुझे खाने को दो।

मेढ़क ने कहा—मित्र, तुमने मित्रता-धर्म निभाया है, अब तुम अपने घर लौट जाओ।

साँप बोला—यह असम्भव है कि मैं घर लौट जाऊँ क्योंकि जब तक मैं उस बिल में रहता था वह मेरा दुर्ग था, पर जब मैंने उसे इतने दिनों से त्याग दिया तो खाली पाकर उस पर किसी ने अधिकार भी कर लिया होगा। अब तो मैं यहाँ रहने के लिए विवश हूँ, इसलिए तुम्हीं को मेरे भोजन का प्रबन्ध करना होगा, अन्यथा मैं तुम्हारे कुटुम्ब को खा जाऊँगा। यह सुनकर उस पर तो वज्र सा टूट पड़ा क्योंकि बलवान् शत्रु से मित्रता करना मूर्खता है।

विवश होकर उसे साँप को उसके भोजन के लिए एक मेंढ़क नित्य अपने कुटुम्ब से देना पड़ा और कुछ ही दिनों में उनका भी सफाया हो गया। यह देखकर गंगदत्त को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि अब केवल वही बचा था। साँप ने जब उससे भोजन माँगा तो उसने कहा—चिन्ता क्या है यदि तुम मुझे आज्ञा दो तो मैं दूसरे कुएँ से अनेकों मेढ़क बुला लाऊँ और फिर तुम उन्हें आनन्द से अपना भोजन बनाना। साँप ने स्वीकार कर लिया। मेढ़क बेचारा अपनी जान लेकर वहाँ से भागा।

कई दिन बीत गये और जब गंगदत्त न लौटा तो साँप ने सोचा कि अरे और कोई मेढ़क न सही गंगदत्त ही मिले तो कम से कम क्षुधा तो शान्त हो। उसने कुएँ में रहनेवाली एक छिपकली द्वारा उससे कहलाया कि यदि मेढ़क न आते हों तो कोई चिन्ता नहीं तुम लौट आओ, क्योंकि यहाँ अकेले मेरा मन नहीं लगता। गंगदत्त ने कहला दिया—

बुभुक्षितः किं न करोति पापं क्षीणाः नराः निष्करुणा भवन्ति।
आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्य न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम्॥

अर्थात्—भूखा मनुष्य कौनसा पाप नहीं करता क्योंकि क्षीण मनुष्य निर्दय होते हैं। हे भद्रे! प्रियदर्शन (साँप) से जाकर कहो—गंगदत्त पुनः कुएँ में नहीं आयेगा।

पच्चीसवीं कथा

बन्दर और मगर

समुत्पन्नेषु कार्येषु बुद्धिर्यस्य न हीयते ।
स एव दुर्गतरति जलस्थो वानरो यथा ॥

अर्थात्—कार्य उपस्थित हो जाने पर जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती वही कठिनाइयों को पार करता है, जैसे पानी में रहकर भी वानर ने मगर से प्राणरक्षा की ।



सागर तट पर, नाशपाती के पेड़ पर रक्तमुख नामक एक बन्दर रहता था ।

एक दिन करालमुख नामक एक मगर सागर के बाहर निकलकर रेत में आराम करने लगा । उसे देखकर बन्दर ने कहा—मित्र ! तुम हमारे अतिथि हो, लो यह मीठे-मीठे फल खाओ । ऐसा कहकर बन्दर ने कुछ नाशपातियाँ उसके पास फेंक दीं । मगर मीठी-मीठी नाशपातियाँ खाकर बहुत प्रसन्न हुआ । वह नित्य ही वहाँ आने लगा और उसमें तथा बन्दर में मित्रता हो गई ।

करालमुख एक दिन थोड़े से फल अपने घर ले गया और अपनी पत्नी को खाने को दिये । वह उन फलों को खाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसने पूछा कि ऐसे सुन्दर सुस्वाद

फल उसे कहाँ मिल गये। मगर ने बतलाया कि सागर तट पर उसका एक बन्दर मित्र रहता है, उसी ने यह फल दिये हैं।

उसकी पत्नी ने कहा—जो नित्य ही अमृत जैसे मीठे फल खाता है उसका दिल भी बहुत मीठा होगा, इसलिये यदि तुम मुझे प्यार करते हो तो उसका दिल लाकर खिलाओ जिसे खाकर फिर मैं कभी बुड्ढी ही न होऊँगी और न कभी बीमार पड़ूँगी।

मगर ने कहा—मूर्खता की बातें मत करो। बन्दर मेरा बहुत बड़ा मित्र है और नित्य ही मेरा सत्कार करता है, भला मैं उसकी जान कैसे ले सकता हूँ! विपत्ति में साथ देनेवाले मित्र को कभी धोखा नहीं देना चाहिए।

पर उसने कहा—आज तक तुमने मेरी कोई बात नहीं टाली, किन्तु आज टाल रहे हो। अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि बन्दर तो नहीं बल्कि किसी बँदरिया से तुम्हें प्रेम हो गया है और इसीलिये तुम ऐसा करने से संकोच कर रहे हो। कई दिनों से मैं देख रही हूँ कि तुम मुझसे कुछ विरक्त से रहते हो।

यह सुनकर मगर बहुत दुखी हुआ और बोला—तुम्हारे प्रेम में मैं संसार को भूल गया हूँ।

किन्तु उसने रोना आरम्भ कर दिया और क्रुद्ध होकर बोली—झूठ बिल्कुल झूठ अरे निष्ठुर तू मुझे बिल्कुल नहीं चाहता। तू किसी तरुणी के प्रेमपाश में बद्ध है, अतः मुझे बुड्ढी जानकर उपेक्षा करता है।

इस प्रकार से वह नाना प्रकार के त्रियाचरित्र करने लगी। विवश होकर मगर खिन्न-चित्त से वहाँ से चल दिया। रास्ते भर सोचता रहा कि क्या करना चाहिए। भला एक मित्र के साथ विश्वासघात करना चाहिए या नहीं। अन्त में स्त्री-प्रेम ने मित्र-प्रेम पर विजय पाई और वह किनारे पर जा पहुँचा। बन्दर ने उसे देखकर इतनी देर में आने और सुस्त होने का कारण पूछा। मगर ने कपटभाव से उत्तर दिया—मित्र! आज तुम्हारी भाभी मुझसे बहुत नाराज हो गई और बोली कि नित्य ही तुम जाकर रक्तमुख के यहाँ फलाहार करते हो पर तुमने आज तक कभी उसे अपने घर निमन्त्रण न दिया। बड़ी लज्जा की बात है क्योंकि जिससे प्रेम-सत्कार प्राप्त करते हो उसकी भी सेवा करो।

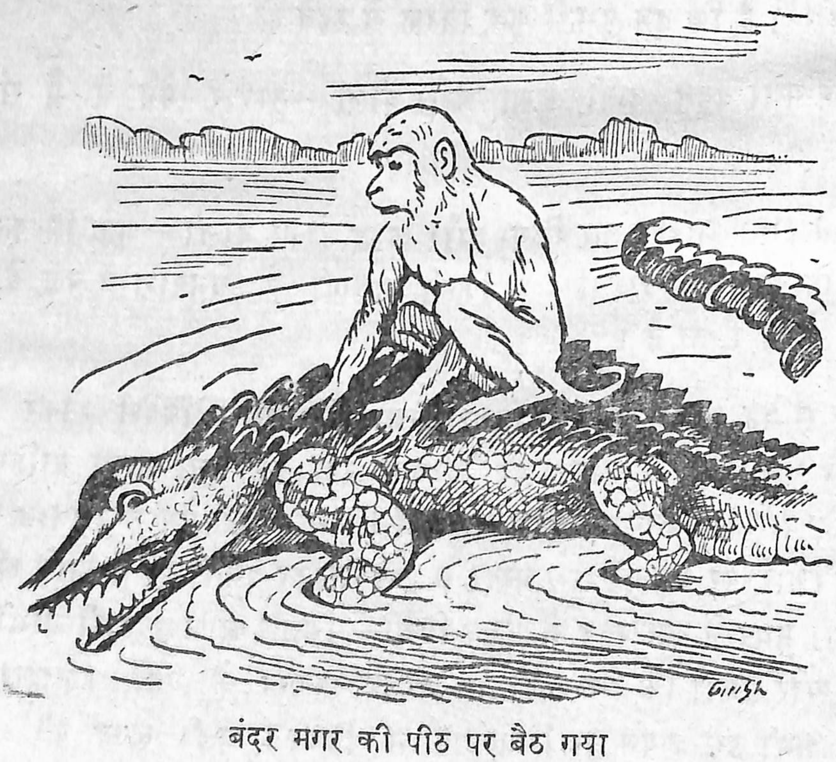
इसी बात पर मेरा और उसका अधिक देर तक विवाद हुआ। अन्त में उसने कहा कि

यदि आज तुम मेरे देवर को यहाँ बुलाकर नहीं लाओगे तो मैं उपवास करके प्राण त्याग दूँगी। इसलिये विवश होकर मैं तुम्हें बुलाने आया हूँ।

बन्दर ने कहा--मित्र! धन्य हैं मेरे भाग्य, जो भाभी ने मुझे इतने आग्रह के साथ बुलाया है। किन्तु मैं तुम्हारे साथ चलने से विवश हूँ क्योंकि तुम रहते हो जल में और मैं पेड़ पर। फिर भला मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकता हूँ।

मगर ने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है। मैं तुम्हें अपनी पीठ पर बिठा कर ले चलूँगा और मेरा घर तो सागर के दूसरे तट पर रेत में है, इसलिये तुम वहाँ आसानी से चल सकते हो।

बन्दर उसका इतना आग्रह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—मित्र तो पास की वस्तु का आदान-प्रदान कर सुख-दुख में भागी होते हैं। तुम्हारा प्रेम देखकर मुझे सुख हुआ। चलो मैं सहर्ष तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ।



बंदर मगर की पीठ पर बैठ गया

बन्दर मगर की पीठ पर बैठ गया और मगर चल दिया। जब मगर अधिक गहरे सागर में पहुँचा तो उसने सोचा कि अब तो यह मेरे चंगुल में फँस ही गया और बच के जा

नहीं सकता। क्यों न इसे सच्ची बात बता दूँ जिसमें मरने से पहले कम से कम यह अपने ईश्वर को तो याद कर ले। यह सोचकर मगर ने बन्दर से कहा—मित्र! निमन्त्रण का तो मैंने तुमसे केवल बहाना किया था। सच्ची बात तो यह थी कि तुम्हारे मीठे फल खाकर मेरी पत्नी की इच्छा तुम्हारा दिल खाने को हुई। मैंने उसे लाख समझाया पर वह मानी ही नहीं। इसलिए मैं विवश हो गया और अब तुम्हें उसके पास इसीलिए लिये जा रहा हूँ कि वह तुम्हारा दिल खा ले।

यह सुनकर बन्दर घबड़ा गया। पर उसने बड़ी हिम्मत से काम लिया। क्योंकि विपत्ति में बुद्धि तथा धैर्य से काम लेकर मनुष्य सुखी होता है।

बन्दर ने कहा—मित्र! अगर ऐसी बात थी तो तुमने मुझे पहले ही क्यों न बता दिया। अब तो मुझे भाभी के पास ले चलने से भी कोई लाभ न होगा क्योंकि अपना दिल तो मैं पेड़ के खोखले में ही छोड़ आया हूँ। अगर मुझे यह बात मालूम होती तो मैं उसे साथ ही लिये आता। इसमें कौन सी ऐसी बात थी जो तुम मुझे बताने से डर गये?

मगर ने कहा—यदि तुम अपना दिल इतनी प्रसन्नता से देने को तैयार हो तो चलो मैं तुम्हें वापस लिये चलता हूँ, तुम मुझे अपना दिल दे देना।

बन्दर ने कहा—बड़ी प्रसन्नता से। मगर उसे फिर किनारे पर लौटा लाया और बन्दर उसकी पीठ से कूदकर झट पेड़ पर चढ़ गया और सोचा—धूर्त की बात पर विश्वास करने से असमय में ही काल के गाल में जाना पड़ता है।

जब अधिक देर हो गई और बन्दर न लौटा तो मगर ने कहा—मित्र! लाओ अपना दिल, जो तुमने देने को कहा था।

इस पर बन्दर खूब हँसा और बोला—मूर्ख, जा घर लौट जा, यह तो मेरी एक चाल थी, जिससे मेरे प्राण बच गये। भला संसार में किसी के कभी दो दिल भी हुए हैं। अब कभी भूलकर भी इस ओर लौटकर मत आना। क्योंकि एक बार शत्रु से धोखा खाकर जो सतर्क नहीं होता वह अपना काल स्वयं बुलाता है।

यह सुनकर मगर बहुत पछताया और सोचने लगा—हाय, अब घर क्या मुँह लेकर जायँ। व्यर्थ मैंने यह भेद इससे खोला। आग लगे मेरी जिह्वा पर। उधर वह उपवास किये बैठी होगी। यदि इसे लेकर नहीं पहुँचा तो वह हठी अपनी जान दे देगी। तरह-तरह की



बातें सोचकर उसने बन्दर से बड़ी अनुनय-विनय की और कहा— मित्र ! वह तो मैंने तुमसे हँसी किया था और इसमें कोई सचाई थोड़ी थी। तुम तो तनिक सी बात पर रूठ गये। भला अब मैं अकेले घर कैसे जाऊँ ? तुम्हारी भाभी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही होगी। पर बन्दर ने एक न सुनी और कहा--बेकार अपना समय गँवा रहे हो। मैं अब तुम पर तिल भर भी विश्वास नहीं कर सकता और तुमसे तो जग में कुछ भी असम्भव नहीं है। क्योंकि भूखा कौन सा पाप नहीं कर सकता। और फिर जो एक स्थान पर विपत्ति में फँस कर पुनः वहीं जाता है, उसके समान कोई मूर्ख नहीं है। पर याद रक्खो--तुमने अपनी पत्नी के लिये ऐसा नीच कर्म किया। मूर्ख स्त्री कभी किसी की नहीं होती। क्योंकि सर्वस्व देने पर भी विश्वासघातिनी स्त्री ने मुझे तनिक भी नहीं प्यार किया।



जिस समय इन लोगों में ये बातें हो रही थीं, एक जलचर ने आकर मगर को

सूचना दी कि तुम्हारी पत्नी ने उपवास करके अपने प्राण त्याग दिये। यह सुनकर मगर बहुत दुखी हुआ और सोच करने लगा। बन्दर ने कहा—तुम महामूर्ख हो। ऐसी पत्नी के मर जाने पर तुमको तो प्रसन्न होना चाहिए, उल्टे तुम शोक कर रहे हो। तुमसे बढ़कर और कौन दूसरा मूर्ख होगा ?

स्त्रियाँ कहती कुछ हैं और करती कुछ हैं अतः उनकी संगति नहीं करनी चाहिए।

मगर ने कहा—यह सच है पर मैं इस समय दुहरे दुःख से तप्त हूँ। एक तो मेरा घर नष्ट हो गया, दूसरे मेरा मित्र छूट गया।

इस विश्व में धूर्तता से काम नहीं लेना चाहिए क्योंकि वह एक दिन प्रकट हो जायगी।

इतने में ही एक दूसरे जलचर ने आकर मगर को सूचना दी कि एक दूसरे तुमसे भी अधिक शक्तिशाली मगर ने तुम्हारे घर पर अधिकार कर लिया है। यह सुनकर तो उसको और भी दुख हुआ। उसने बन्दर से पूछा—मित्र ! अब क्या करूँ। बन्दर ने कहा—तुम बार-बार यह सब मुझसे क्यों पूछते हो। तुम महामूर्ख हो और मूर्ख को उपदेश देने से कोई लाभ नहीं।

पर मगर के बहुत गिड़गिड़ाने पर उसने कहा—जाओ उससे युद्ध करो या तो जीतोगे या वीरतापूर्वक मारे जाओगे अन्यथा दुनिया में नीच कहाओगे।

बन्दर से ऐसा परामर्श पाकर मगर गया और उसने दूसरे मगर से युद्ध किया। उसे युद्ध में पराजित करके अपने घर पर फिर अधिकार कर लिया।



छब्बीसवीं कथा

मेढ़क तथा सर्प की कथा

स्कन्धेनापि वहेच्छत्रं कालमासाद्य बुद्धिमान्।
महता कृष्णसर्पेण मण्डूका बहवो हताः॥

अर्थात्—बुद्धिमान् को चाहिए कि समय पड़ने पर शत्रु को भी कन्धे पर चढ़ा ले। इसी प्रकार काले साँप ने बहुत से मेढ़कों को मारा।

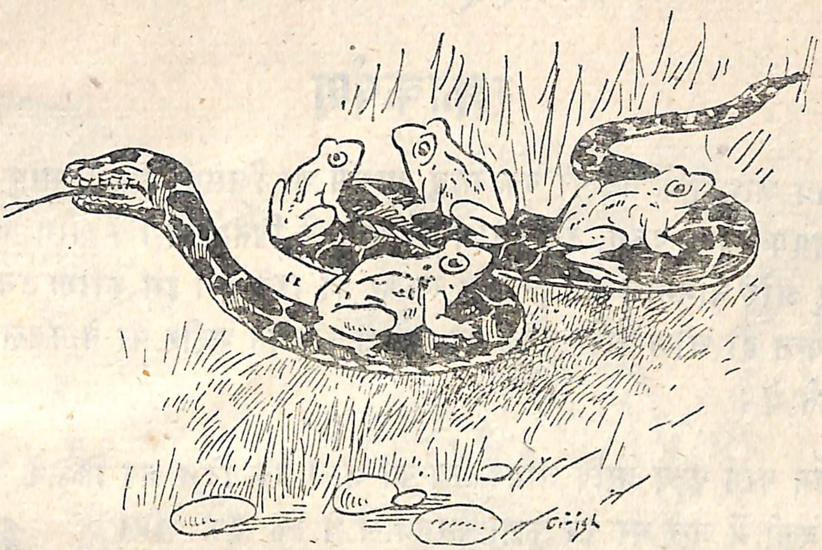
किसी स्थान पर मंदविष नामक एक बुड्ढा सर्प रहता था। वह काफी बूढ़ा हो गया था। इसलिए उसने सोचा कि कोई ऐसा उपाय निकालना चाहिए कि बिना परिश्रम किये ही भोजन प्राप्त हो जाय। ऐसा सोचकर वह एक तालाब के निकट गया जिसमें कि अगणित मेढ़क रहते थे। वहाँ वह अत्यन्त दुखित सा बनकर लेट गया। थोड़ी देर में एक मेढ़क पानी के बाहर उचका और साँप को निश्चल पड़ा देखकर उससे पूछा—चाचा! आज इतने मौन क्यों हो, न भोजन की चिन्ता है, न दुनियाँ की, बात क्या है?

साँप ने कहा—प्यारे मित्र! मैं शप्त हूँ। क्योंकि कल सायंकाल को मैंने एक मेढ़क देखा और उसे खाने के लिए ज्यों ही मैंने फन मारा, वह मेढ़क तो एक ओर उचक गया पर मेरे मुख में एक ब्राह्मण-पुत्र के पैर का अँगूठा आ गया। वह लड़का मेरे विष से तुरन्त ही मर गया। इस बात से क्रुद्ध होकर ब्राह्मण ने मुझे शाप दिया कि जा, अब जीवन भर तेरे ऊपर मेढ़क सवारी किया करेंगे। इसी कारण मैं दुखी हूँ और तुम लोगों की सेवा में आया हूँ।

यह सूचना तुरन्त उस मेढ़क ने अपने राजा को जाकर दी। उनका राजा जलपद तुरन्त ही अपने अनुचरों को लेकर वहाँ आया। जलपद ने तो फन पर सवारी की और उसके अन्य साथी साँप के शरीर पर चढ़ गये। उन मेढ़कों को अपने जाल में फाँसने के लिए मंदविष ने तरह-तरह से कलाबाजियाँ खाकर उन्हें प्रसन्न किया।

दूसरे दिन वह फिर तालाब के निकट पहुँचा। मेढ़कराज ने फिर सवारी की। पर आज

मंदविष धीरे-धीरे चल रहा था। जलपद ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि मैं भूखा हूँ इसीलिए चलने से विवश हूँ। जलपद ने यह सुनकर उसे नीची जाति के छोटे मेढ़कों का खाने की आज्ञा दे दी। यह सुनकर साँप बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जलपद को अनेकों



धन्यवाद दिये। अब तो नित्यप्रति ही वह बिना संकोच के मेढ़क खाने लगा और कुछ समय में काफी मोटा हो गया। जलपद तो मंदविष की बनावटी नम्रता के जाल में बुरी तरह फँस चुका था इसलिए वह कुछ भी न समझ सका।

एक दिन जब मंदविष जलपद को अपने ऊपर बैठाकर घुमा रहा था एक दूसरा सर्प उधर से निकला और यह कौतुक देखकर साँप से पूछा—मित्र, जो हमारा स्वाभाविक भोजन है वह तुम पर कैसे आरूढ़ है। मंदविष ने कहा—जहाँ लाभ की आशा हो वहाँ झुकना अच्छा होता है।

इसका अर्थ ? दूसरे सर्प ने पूछा पर मंदविष ने अपना भेद न दिया।

कुछ ही दिनों में उसने सारे मेढ़क खा डाले।

सत्ताईसवीं कथा

रक्ताकर्षण

परम पवित्र जाह्नवी के तट पर एक साधु आश्रम था जिसमें अनेक साधु रहते थे और अपना सारा समय हवन, पूजन, ईश्वराराधना आदि में बिताते थे। वे लोग केवल कुछ घूँट गंगाजल पीकर और नाममात्र को कन्दमूल खाकर ही रहते थे। इस कारण उनके शरीर कठोर साधना में अत्यन्त ही क्षीण और दुर्बल हो गये थे। अपने शरीर पर वे केवल एक कौपीन-मात्र ही पहिनते थे।

यह आश्रम परम पूज्य ऋषि याज्ञवल्क्य का था। एक दिन जब कि वे गंगास्नान कर रहे थे और अंजली में जल भर कर कुल्ला करनेवाले थे कि एक चील के पंजों से छूटकर एक चुहिया उनके हाथों में आकर गिरी। उन्होंने उसे वट-वृक्ष के पत्ते पर रख दिया और स्वयं नहाने लगे। उसके बाद ब्रह्मशक्ति से महर्षि ने उस चुहिया को एक नवयुवती के रूप में बदल दिया और उसे अपने आश्रम ले गये।

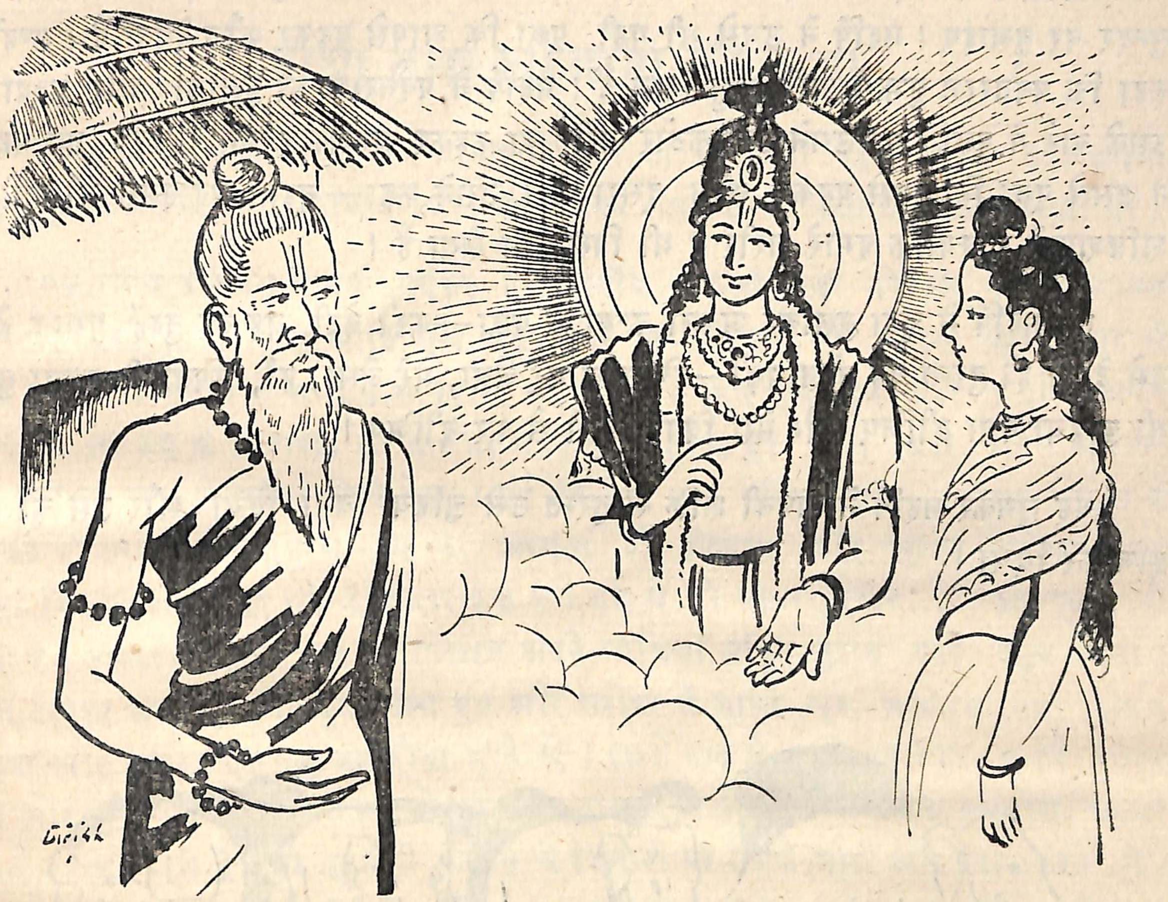


महर्षि-पत्नी के कोई सन्तान न थी इसलिये उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—प्रिये, लो मैं तुम्हारे लिए एक कन्या लाया हूँ। तुम्हारे कोई सन्तान नहीं है, इसलिये तुम इसे पुत्रीवत् पालो। महर्षि-पत्नी ने सहर्ष अपने पति की भेंट को स्वीकार कर लिया और उसे पालने लगी।

जब वह लड़की यौवनावस्था को प्राप्त हुई तब ऋषि-पत्नी ने अपने पति से उसके लिए वर खोजने को कहा। महर्षि ने कहा—अवश्य, इसकी अवस्था अब विवाह योग्य हो गई है, इसलिए यह आवश्यक है कि इसका विवाह जल्दी से जल्दी कर दिया जाय क्योंकि यौवनावस्था में कन्या का विवाह न करने से अपार दुख प्राप्त होता है। तब वह पिता के लिए प्रेम की वस्तु नहीं अपितु विष की ज्वाला बन जाती है।

इसलिए मैं इसके लिए बहुत ही सुन्दर वर लाऊँगा। मैं अभी सूर्य को बुलाता हूँ और इसे उसके साथ ब्याह दूँगा।

ऋषि-पत्नी ने कहा—शुभस्य शीघ्रम्। भला इससे अधिक सुन्दर बात और क्या हो सकती है।



महर्षि ने सूर्य को बुलाया और उनसे कहा—सूर्यदेव! मैं अपनी कन्या का विवाह आपके साथ करना चाहता हूँ, कृपया इसे स्वीकार कीजिये। फिर अपनी पुत्री से कहा—बेटी, तुम्हें यह वर पसन्द है जो तीनों लोकों को प्रकाशित करता है।

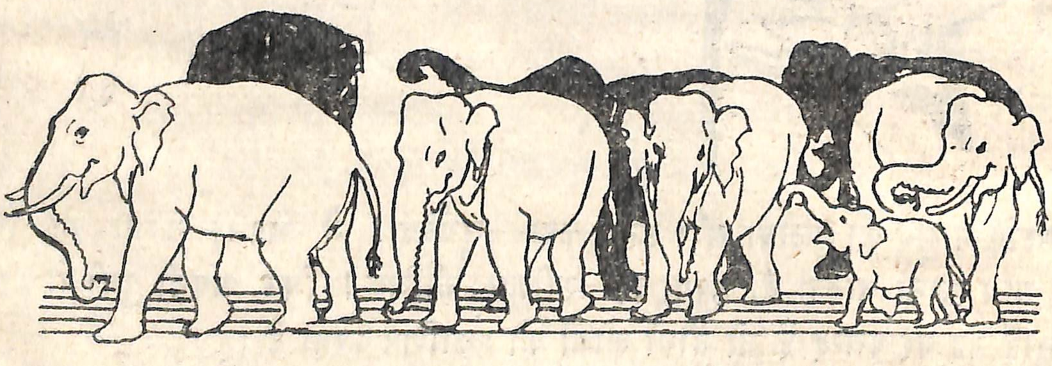
"नहीं पिताजी! इनके कठोर तेज को मैं सहन नहीं कर सकती। कृपया कोई इनसे भी अधिक सुन्दर वर मेरे लिए ढूँढ़िये।"

यह सुनकर महर्षि ने सूर्य से पूछा कि तुमसे भी अधिक अच्छा कोई है। सूर्य ने कहा कि

जलदेव मुझसे कहीं बढ़कर हैं। महर्षि ने तुरन्त उन्हें बुलाया और उनसे अपनी कन्या को स्वीकार करने को कहा। पर जलदेव को भी ऋषिकन्या ने कहा कि यह अत्यन्त कुरूप हैं। महर्षि ने जलदेव से पूछा कि आपसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कोई पुरुष है। उन्होंने कहा कि वायु देवता (पवन) मुझसे बढ़कर हैं। तब महर्षि ने उन्हें बुलाया किन्तु कन्या ने उन्हें भी अस्वीकार कर दिया और कहा कि यह अत्यन्त क्षीणकाय हैं। कृपया इनसे भी अधिक सुन्दर वर बुलाइए। महर्षि ने उनसे भी यही पूछा कि आपसे बढ़कर कौन देवता है। उन्होंने कहा कि पर्वतराज मुझसे अधिक गुणवान् हैं। महर्षि ने पर्वतराज को बुलाया और कन्या से उसके बारे में पूछा। पर उसने उन्हें कठोर शरीर का कहकर अस्वीकार कर दिया। तब महर्षि ने उससे पूछा कि तुमसे बढ़कर कौन दूसरा है। उसने कहा—चूहा। वह हमसे भी अधिक शक्तिशाली है क्योंकि हमारे शरीर में भी बिल बना लेता है।

तब महर्षि ने चूहा बुलाकर अपनी कन्या से पूछा—कहो बेटी, यह वर तुम्हें पसन्द है ? उसे देखते ही तुरन्त वह बोल पड़ी—बिलकुल मेरे जैसा, मेरे जैसा, हाँ, पिताजी कृपया मुझे भी चुहिया बना दीजिए और मेरा विवाह इसी से कर दीजिए।

यह सुनकर महर्षि ने अपनी शक्ति से तुरन्त उसे चुहिया बना दिया और उसे चूहे को दान कर दिया।



अट्ठाईसवीं कथा

हाथी तथा खरगोश की कथा

जंगल के एक भाग में चतुर्दन्त नामक हाथियों का एक राजा रहता था। वह अपना समय सुन्दर वन-विचरण, आमोद-प्रमोद तथा अपने साथियों की रक्षा में व्यतीत करता था।

एक समय उस वन में एक भयंकर द्वादशवर्षीय अकाल पड़ा जिसके कारण समस्त सरोवर, झरने, नदी, नाले आदि सूख गये और पृथ्वी गर्मी के कारण जगह-जगह से फट गई। अब तो पानी न रहने के कारण समस्त हाथी बहुत दुखी हुए और उन्होंने अपने राजा से इस कष्ट के निवारण की प्रार्थना की। उसने तुरन्त ही चारों ओर अपने अनुचरों को जल का पता लगाने के लिये भेजा। पूर्व की ओर एक पवित्र और मनोरम आश्रम के निकट ही उन्हें एक चन्द्रसरस नाम का अत्यन्त ही विशाल और सुन्दर सरोवर मिल गया जिसके चारों ओर घने छायादार वृक्ष लगे हुए थे जो नाना प्रकार के फल-फूलों से लदे थे। उसका समाचार पाते ही गजराज अपने साथियों सहित तुरन्त वहाँ पहुँच गया। जल देखकर समस्त हाथी बहुत प्रसन्न हुए और सरोवर में जाकर खूब जलपान तथा स्नान किया और अधिक देर तक जलक्रीड़ा करते रहे। इसके बाद वे सबके सब फिर अपने स्थान की ओर लौट गये। उसी सरोवर के एक ओर ढालू भूमि के नीचे अगणित खरगोश अपनी भीटें बनाकर रहते थे और बहुत से तालाब के किनारों पर उसके चारों ओर रहा करते थे। इन हाथियों के एकाएक वहाँ आने और स्नान करने से सहस्रों खरगोश हाथियों के विशाल पैरों के नीचे पड़कर कुचल गये और मर गये।

हाथियों के जाते ही समस्त भयभीत खरगोश एकत्रित होकर आपस में सलाह करने लगे—अब क्या करना चाहिए? यह लोग तो अब नित्य ही यहाँ आवेंगे। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इन लोगों का यहाँ आना ही बन्द हो जाय।

विजय नामक एक खरगोश ने उन लोगों को इतना भयभीत और सशंकित देखकर कहा—अब आप लोग चिन्ता न करें। मैं इस कार्य का भार अपने ऊपर लेता हूँ कि वे

लोग अब इस ओर कभी न आवेंगे, क्योंकि मेरे शुभ देवता ने इस कार्य को करने की मुझे आज्ञा दी है।

यह सुनकर खरगोशों के राजा शिलीमुख ने उसके साहस और सज्जनता को साधुवाद देते हुए कहा—मित्र विजय ! तुम धन्य हो। सच है विपत्ति में सहायक विश्वबन्धु होता है। तुम्हारे इस सत्कार्य से तुम्हारे सभी जाति भाई आजीवन तुम्हारे आभारी रहेंगे और हाथियों में भी हमारी जाति का महत्त्व बढ़ जायगा। जाओ, किन्तु बुद्धिमानी से काम लेना। भगवान् तुम्हारी सहायता करें।

सबसे विदा लेकर विजय चतुर्दन्त को खोजता हुआ चल दिया। उसने वहाँ जाकर देखा कि चतुर्दन्त अपने अनेक अनुचरों से घिरा हुआ बैठा है। उसके अनेक दास उसकी सेवा में संलग्न हैं। उसके ठाट को देखकर विजय ने सोचा कि यहाँ तो अपनी दाल गलना कठिन है। इसलिए कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिए जिससे इससे मेरी दो-दो बातें हो जावें। ऐसा सोचते हुए वह एक पेड़ पर चढ़ गया और डाल पर बैठकर बोला—कहिए गजराज, आप आनन्द से तो हैं ?

गजराज ने पूछा—आप कौन हैं, महाशय ?

मैं राजदूत हूँ, उसने कहा।

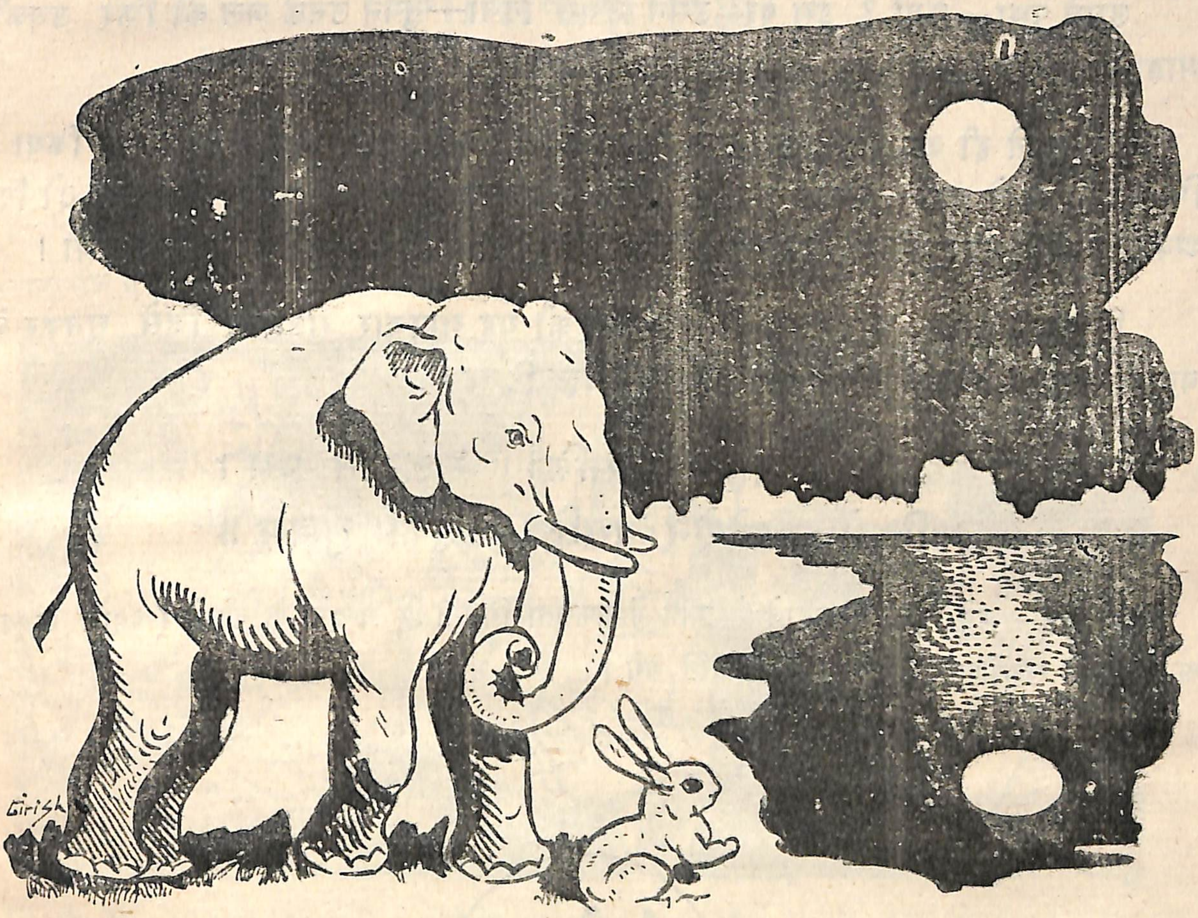
किसके ?

महाराज चन्द्रदेव के।

आप अपने यहाँ आने का कारण कहिए।

इससे पहले मैं आपको महाराज चन्द्रदेव का सन्देश दूँ। मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप यह तो जानते ही हैं कि दूत को किसी प्रकार की हानि न पहुँचानी चाहिए क्योंकि दूतों द्वारा ही एक राजा दूसरे के पास अपना सन्देशा भेजता है। अब मैं आपकी सेवा में उनका सन्देशा सुनाता हूँ। उन्होंने कहा है—हे गजराज ! तुमने अकारण ही तुच्छ जीवों पर अत्याचार किया है। ऐसा घृणित काम करके और मेरे चन्द्रसरस में स्नान करके तुमने बहुत बड़ा अपराध किया है। तुमने वहाँ अगणित खरगोशों को मौत के घाट उतार कर उस स्थान को कलंकित और अपवित्र बना

दिया है। वहाँ के निवासी समस्त खरगोश मेरे आश्रम में बसते हैं, इस कारण मैं तुम्हें सावधान करता हूँ कि भूल कर भी अब कभी उस सरोवर की ओर न आना अन्यथा तुम्हें इसका दण्ड भुगतना पड़ेगा और मेरे क्रोध की ज्वाला तुम्हारे शरीर को भस्मीभूत कर देगी।



यह सुनकर गजराज सहम गया और उसने तुरन्त कहा—महाशय! मुझसे अनजाने में यह अपराध हो गया है। कृपया कोई ऐसा उपाय कीजिए जिससे मैं चन्द्रदेव से क्षमा प्राप्त कर सकूँ।

विजय ने कहा—आइए मेरे साथ मैं आपको उनके दर्शन करा दूँ और उसे ले जाकर चन्द्रमा की परछाईं सरोवर में दिखा दी। हाथी ने सोचा कि इनसे भेंट करने से पहले मुझे स्नान करके पवित्र हो जाना चाहिए। यह सोचकर उसने अपनी सूँड़ पानी में डुबो दी।

ज्यों ही सूँड़ पानी में डूबी सरोवर का जल धक्का लगने से अस्थिर हो गया और उसकी लहरों में चन्द्रमा इधर-उधर नाचने व हिलने लगा तथा लहरों में अनेक चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगे। विजय ने घबराहट दिखाते हुए कहा—ओ राजन्! तुमने यह क्या किया? तुमने चन्द्रदेव को और भी क्रुद्ध कर दिया।

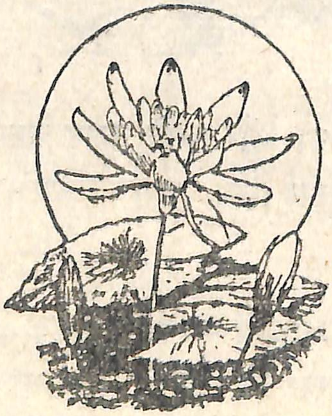
उसने पूछा—क्यों? इस पर उसने उत्तर दिया—तुमने उनके जल को फिर उनकी आज्ञा के विरुद्ध छुआ है इस कारण वे क्रुद्ध हो गये।

यह सुनते ही वह तुरन्त सिर झुकाकर भूमि में लेट गया और चन्द्रदेव को प्रणाम किया। फिर खरगोश से कहा—मित्र, तुम मुझे चन्द्रदेव से क्षमा दिलवा दो और उनसे कह दो कि अब मैं कभी भूलकर भी इस ओर न आऊँगा। यह कहकर वह तुरन्त वहाँ से चला गया।

विजय ने तुरन्त आकर अपने साथियों को यह समाचार सुनाया, जिसे सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे बहुत बहुत धन्यवाद दिया।

व्यपदेशेन महतां सिद्धिः सञ्जायते परा।
शशिनो व्यपदेशेन वसन्ति शशकाः सुखम्॥

अर्थात्—बड़े लोगों के बहाने से कार्य में सफलता मिलती है; चन्द्रमा के बहाने (व्याज अथवा आश्रय) से खरगोश सुखपूर्वक निवास करने लगे।



उन्तीसवीं कथा

न्यायाधीश बिल्ली

क्षुद्रमर्थपतिं प्राप्य न्यायान्वेषणतत्परौ।
उभावपि क्षयं प्राप्तौ पुराशशकपिञ्जलौ॥

अर्थात्—न्याय का अन्वेषण करनेवाले खरगोश तथा तीतर क्षुद्र न्यायाधीश बिल्ली के पास जाकर नष्ट हो गये।



किसी समय एक पेड़ पर एक तोता रहता था। उसकी डाल के नीचे ही दूसरी डाल पर एक तीतर रहता था। पड़ोसी होने के नाते उन दोनों में काफी मैत्री हो गई। नित्य ही भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर दोनों मनोविनोद के लिए इधर-उधर उड़ने को निकल जाते तथा अपना समय नाना प्रकार की कहानी सुनने-सुनाने में बिताते।

एक दिन तीतर अन्य पक्षियों के साथ एक ऐसे स्थान पर गया जहाँ धान की खेती खूब फली हुई थी। जब संध्या अधिक हो जाने पर भी वह नहीं लौटा तब तोते के मन में विचित्र आशंकाएँ और चिन्ताएँ उठने लगीं। रह-रहकर यही विचार पैदा होता था कि कहीं

मेरा मित्र किसी क्रूर बहेलिये के जाल में तो नहीं फँस गया या किसी अज्ञात घटनावश वह अपने प्राण तो नहीं गँवा बैठा। इसी सोच-विचार में कई दिन बीत गये और उसका कोई पता न चला।

एक दिन संध्या को शीघ्रगा नामक एक खरगोश ने आकर तीतर के खोखले में अपना डेरा डाल दिया। तोते ने भी इस बात पर कोई हस्तक्षेप न किया क्योंकि तीतर के लौटने की अब कोई आशा न रही थी।

कुछ दिनों बाद एकाएक एक दिन तीतर को, जो धानों के खेत की फसल खाकर खूब मोटा और स्वस्थ हो गया था, अपने घर की याद आई और वह लौट आया। प्राणी अन्यत्र कहीं कितना ही सुख क्यों न पाता हो, घर की याद आती ही है।

किन्तु यहाँ जब उसने अपने घर में शीघ्रगा को अधिकार जमाये देखा तो क्रुद्ध होकर कहा—महाशय! आपका यह कार्य नीतिविरुद्ध है। आपने मेरे घर पर अधिकार क्यों कर लिया। इसे तुरन्त खाली कर दीजिए।

खरगोश ने कहा—मंदबुद्धि! क्या यह बात तुमने नहीं सुनी कि घर तभी तक मनुष्य का कहलाता है जब तक वह उसमें रहता है।

अच्छा! आओ हम लोग पड़ोसियों से इसके बारे में न्याय करावें, क्योंकि जब किसी जायदाद का झगड़ा होता है तो पड़ोसियों की गवाही को मान्यता दी जाती है। बोलो, सहमत हो इस बात पर—तीतर ने कहा।

खरगोश ने कहा—अरे बुद्धू, क्या तुमने यह कहावत सुनी नहीं कि आँख की साक्षी कभी नहीं मिटती।

फिर भी देवर्षि नारद की बात याद रक्खो—पक्षियों का जहाँ बसेरा होता है वहीं उनका अपना स्थान है। पूर्व स्थान पर उनका कोई अधिकार नहीं।

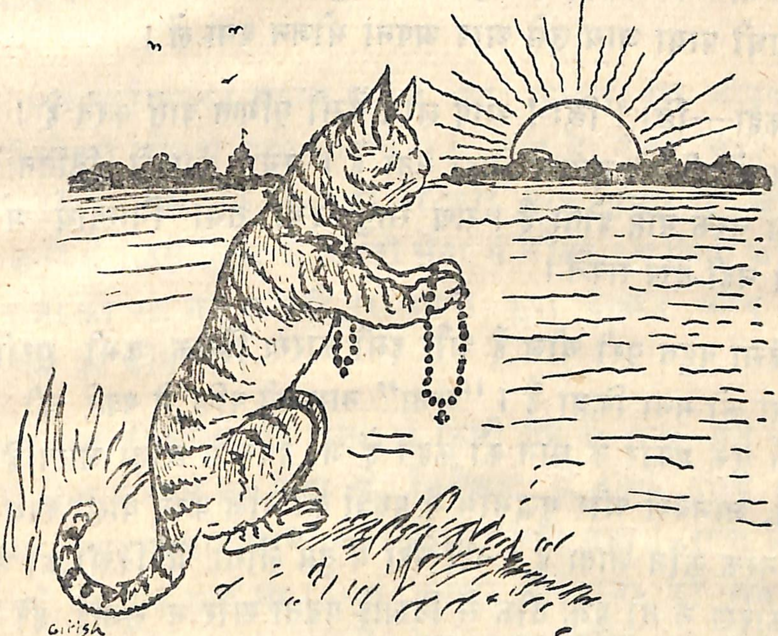
यदि यह मान भी लिया जाय कि यह स्थान तुम्हारा है, तथापि जब मैं यहाँ आया था यह खाली था और मैं यहाँ रहने लगा। इसलिए अब यह मेरा है।

तीतर ने कहा—अच्छा, जब तुम इतनी पुरानी बातें करते हो तो आओ मेरे साथ हम

लोग अपना फैसला अपने से अधिक नीतिवान और विद्वान लोगों से चलकर करा लें। जैसी भी उन लोगों की राय होगी हम लोग सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।

अच्छी बात है चलो देखें क्या फैसला होता है—कहकर खरगोश उसके साथ चल दिया। उत्सुकता-वश उन लोगों का अन्तिम न्याय देखने के लिए तोता भी उड़कर उनके साथ ही चल दिया।

रास्ते में खरगोश ने तीतर से पूछा कि वह नीतिवान मनुष्य कौन है जिसके पास न्याय कराने के लिए तुम मुझे लिए जा रहे हो। तीतर ने कहा—गंगा के सुन्दर रेतीले किनारे पर जहाँ गंगा की पावन लहरें चौबीसों घंटे अविराम गति से स्वर्गीय लय और ध्वनि में गीत गाते हुए बहती हैं, एक बिलाव रहता है जिसका नाम दधिकर्ण है। वह संन्यास ले



चुका है और चौबीसों घंटे ईश्वराराधना ही में बिताता है। इस तपस्या के कारण उसके शरीर से एक अनुपम दिव्य ज्योति निकलती है, और वह सारे संसार को भूलकर अपने ध्यान ही में लीन रहता है।

खरगोश ने जब बिल्ले को देखा तो घबड़ा गया और तीतर से कहा—नहीं-नहीं यह धूर्त्त है। धूर्त्त साधु होने पर भी धूर्त्तता नहीं छोड़ता। अतः धूर्त्त साधु होने पर भी धूर्त्त होता है—इसकी बातों में फँसकर आपत्ति में पड़ जाओगे।

यह सुनकर दधिकर्ण जो आराम के साथ अपनी जीविका कमाने का अभ्यस्त हो गया था अपने हाथ जोड़कर सूर्य की ओर मुँह करके खड़ा हो गया और बोला--हरे! हरे! यह सब माया है, यह नश्वर शरीर क्षण भर में विनाश को प्राप्त होता है। जीवन की सुख-प्राप्ति केवल स्वप्नमात्र है। गृहस्थी जादूगर का जाल है। सिवा भगवद्भजन के मनुष्य के पास निर्वाण का और कोई उपाय नहीं। मैं अपना प्रतिपल ईशभजन में ही लगाऊँगा, एक क्षण भी व्यर्थ न जाने दूँगा।

उसकी बातें सुनकर खरगोश ने तीतर से कहा—मालूम तो धर्मवान पड़ता है। चलो इससे पूछें। किन्तु तीतर ने डरते हुए कहा—यह हमारा स्वाभाविक शत्रु है। भला होगा यदि हम लोग दूर ही से इससे पूछें। दोनों ने दूर ही से बिल्ले से पूछा—पूज्य महात्मन! हम दोनों में एक बात पर मतभेद है। कृपया धर्मानुसार आप उसका न्याय कर दीजिए और हम में जो अपराधी पाया जाय उसे आप अपना भोजन बना लें।

बिल्ले ने कहा—छिः! छिः! आप लोग कैसी घृणित बातें करते हैं। मेरा सारा शरीर आपकी निठुर बातों ही को सुनकर सिहर उठा है। क्या आपको विदित नहीं कि ऐसे कुकृत्यों से सीधा नरक प्राप्त होता है। सच्चे साधु दया तथा निःस्वार्थ प्रेम करते हैं। वे किसी का क्लेश नहीं देख सकते।

मित्रो! हिंसा बहुत बुरी चीज है और इसी कारण हिंसक कभी सुखी नहीं रहता। वेदों ने भी हिंसा को मना किया है। "अजा" नाम की बलि से बकरे की बलि का अर्थ नहीं बल्कि अजा एक प्रकार के धान को कहते हैं जो हवन में छोड़ा जाता है। यदि कहावत के अनुसार पेड़ों, जानवरों और युद्धभूमि में पुरुषों की बलि करने वाला स्वर्ग जाता है, तो फिर बतलाओ नरक कौन जाता है। नहीं-नहीं मैं तुम लोगों में किसी को नहीं खा सकता। बुड्ढा होने के कारण न तो मुझे ठीक से दिखाई पड़ता और न सुनाई ही पड़ता है। इस कारण तुम लोग तनिक निकट आकर अपनी अपनी बात कहो ताकि मैं उसे ठीक से सुन और समझकर उचित न्याय कर सकूँ क्योंकि लालच तथा गर्ववश जो उचित न्याय नहीं करता वह पीड़ितों की हाय लेकर नरक में जाता है।

इसलिए आप लोग मुझ पर विश्वास करें और मेरे निकट आकर जो कहना हो कहें।

दोनों मूर्ख उस बिल्ले की चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गये और उसके निकट चले गये। बिल्ले ने एक को मुँह से और दूसरे को पंजे से पकड़ कर खा लिया।

—•—

तीसवीं कथा

सैनिक कुम्हार

एक कुम्हार था जो एक दिन शराब पीकर उसके नशे में अपने घर में लड़खड़ाता हुआ इस प्रकार घुसा कि उसने अपने धक्के से अपने बहुत से बर्तन गिराकर तोड़ दिये। एकाएक अपना पैर फिसल जाने के कारण वह इतने जोर से गिरा कि फूटे बर्तन पर टकरा कर उसका माथा फट गया। कुछ दिनों में घाव तो अच्छा हो गया पर बड़ा भारी चिह्न उस जगह बन गया।

कुछ दिनों बाद वहाँ भयंकर अकाल पड़ा। अतः कुम्हार देश छोड़कर एक दूसरे देश के राजा के यहाँ नौकरी खोजता हुआ जा पहुँचा। राजा ने उसके चेहरे पर भयंकर घाव का निशान देखकर यह समझा कि हो न हो यह कोई परम योद्धा है और किसी युद्ध में इसके यह चोट लगी है। उसे तुरन्त ही अपनी सेना में नौकर रख लिया और एक अच्छा सा पद दे दिया। राजा की एक नये आदमी पर इतनी कृपा देखकर अन्य अधिकारी मन में उससे क्रुद्ध हो गये पर मौन रहे।

इस घटना के कुछ ही समय बाद राजा को किसी शत्रु के साथ युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। जब सारी सेना सजधज कर राजा के निरीक्षण के लिये उसके सामने से निकली तो राजा को उस कुम्हार से बात करने का अवसर मिल गया। राजा ने उससे पूछा कि किस युद्ध में उसके वह घाव लगा था। मूर्ख कुम्हार ने राजा को सच सच सारी घटना बता दी कि वह घाव किसी युद्ध का नहीं है। यह सुनकर राजा को अपनी भूल पर बहुत खेद हुआ। उसने सोचा कि यदि और लोग यह सुनेंगे तो उसे मूर्ख समझेंगे, इसलिये राजा ने उस कुम्हार को तुरन्त अपनी सेना छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी। कुम्हार ने राजा से विनय की कि कम से कम इस युद्ध में उसकी परीक्षा तो ले ली जाय पर राजा ने कहा—तुम चाहे कितने ही बलवान क्यों न हो पर तुम्हारी वंशहीनता के कारण तुम्हें मैं सेना में रखने से विवश हूँ। क्योंकि नीच पुरुष बुद्धिमान तथा शूर होने पर भी उच्च कार्य नहीं कर सकता।

कुम्हार द्वारा इसका कारण पूछने पर राजा ने उसे एक दृष्टांत सुनाया। किसी जंगल में एक सिंह और सिंहनी रहते थे। सिंहनी ने एक बार दो बच्चों को जन्म दिया। सिंह नित्य उनके लिये तरह तरह का शिकार मार कर लाता और सिंहनी को दे देता।

एक बार सारा दिन जंगल में घूमने पर भी सिंह को कोई आखेट न मिला और सूर्यास्त हो गया। घर लौटते समय सिंह को मार्ग में एक सियार का दूध पीता बच्चा मिल गया। दयावश सिंह ने तो उसे मारा नहीं पर उसे पकड़कर घर ले आया और शेरनी को देकर



कहा--प्रिये! आज जंगल में कोई शिकार तो मिला नहीं। लौटते समय मार्ग में यह बच्चा मिल गया पर दयावश मैंने इसे नहीं मारा। यदि तुम चाहो तो इसे खा सकती हो। मैं कल तुम्हारे लिये अच्छा शिकार ला दूँगा।

शेरनी ने कहा--जब तुमने ही इसे छोड़ दिया तो फिर मैं ही इसे क्यों मारूँ क्योंकि बच्चे तथा स्त्रियाँ अवध्य हैं।

आज से मेरे अन्य दो बच्चों के साथ यह भी पलेगा। क्या हानि है।

शेरनी का दूध पीकर सियार का बच्चा वहीं पला और बढ़कर तरुण हो गया। सिंह के अन्य बच्चों को उसमें और अपने में कभी कोई अन्तर ही न मालूम हो पाया।

एक दिन एक जंगली हाथी शेर की गुफा की ओर आ निकला। जिसको देखते ही शेर के बच्चों में स्वाभाविक हिंसावृत्ति जाग उठी और वे उसे मारने को झपटे। पर सियार-पुत्र डर गया और उसने सिंह-पुत्रों को रोककर कहा कि ऐसी भूल मत करो अन्यथा सिंह तुम्हें मार डालेगा। यह कह कर वह तो गुफा में घुस गया। इधर उसके भाग जाने से यह बच्चे भी डर गये और उनका साहस जाता रहा। सच है एक वीर आगे बढ़कर सेना को विजयी बनाता है। पर एक कायर के भागने से सेना कलंकित हो जाती है। इसी कारण राजा अपनी सेना में चुने हुए वीरों को रखता है।

घर आकर दोनों सिंह-पुत्रों ने अपनी माँ को सारी कथा सुनाई और उसकी बहुत हँसी उड़ाई। इससे सियार-पुत्र बहुत ही लज्जित हुआ और उन्हें मार डालने को उद्यत हो गया। पर शेरनी उसे समझाकर एक ओर ले गई और उसे उसकी सचाई का और अपने यहाँ आने का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर कहा—तुम्हारी भलाई इसी में है कि इससे पहले तुम्हारा भेद मेरे लड़कों पर खुले तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ नहीं तो अपने जीवन से हाथ धो बैठोगे। यह सुनकर सियार-पुत्र वहाँ से तुरन्त ही भाग गया।

यह सुनकर राजा ने कुम्हार से कहा—इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम चुपचाप यहाँ से चले जाओ, अन्यथा भेद खुलने पर तुम्हारा यहाँ रहना कठिन हो जावेगा।

यह सुनकर कुम्हार चुपचाप वहाँ से चल दिया।

स्वार्थमुत्सृज्य यो दम्भी सत्यं ब्रूते सुमन्दधीः।
स स्वार्थाद् भ्रश्यते नूनं युधिष्ठिर इवापरः॥

अर्थात्—जो दम्भी तथा मूर्ख स्वार्थ त्यागकर सत्य बोलता है वह निश्चय ही दूसरे युधिष्ठिर की भाँति स्वार्थ से भ्रष्ट होता है। अर्थात् अपनी हानि करता है।

इकतीसवीं कथा

दुष्टा पत्नी

एक ब्राह्मण था जो अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता था। पर उसकी पत्नी नित्य ही घरवालों से लड़ा करती थी। इससे ऊबकर ब्राह्मण अपनी पत्नी को लेकर वहाँ से चल दिया।



चलते-चलते मार्ग के एक जंगल में ब्राह्मणी को प्यास लगी तो पत्नी को छाया में बैठाकर ब्राह्मण जल खोजने चला गया। लौटकर उसने देखा तो उसकी पत्नी मरी हुई पड़ी थी। उसे मरा देखकर ब्राह्मण को बड़ा दुःख हुआ और वह दहाड़ मार-मारकर रोने लगा इसी समय आकाशवाणी हुई—यदि तू अपने जीवन का आधा काल दे दे तो तेरी पत्नी

तुरन्त जी उठेगी। यह सुनकर ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ और तुरन्त उसने अपनी आधी उम्र ब्राह्मणी को दान कर दी। ब्राह्मणी जी उठी। उसे वहाँ से लेकर ब्राह्मण आगे चला। चलते-चलते वे एक उद्यान के निकट पहुँचे। ब्राह्मण अपनी पत्नी को छाया में बिठाकर भोजन की खोज में चला गया।

उद्यान में एक लँगड़ा अपाहिज बैठा पानी की चर्खी घुमा रहा था और मधुर ध्वनि में एक गीत गा रहा था। उसे सुनकर ब्राह्मणी उस पर मोहित हो गई और तुरन्त उससे जाकर बोली--मैं तुम्हारे प्रेम में दीवानी-सी हो गई। यदि तुम मुझे स्वीकार नहीं करोगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। उसने कहा—भलीमानुस, मैं अपाहिज हूँ शायद यह तुम नहीं जानतीं। मुझसे तुम्हारा कोई भला न होगा। पर ब्राह्मणी हठ पकड़ गई और उसे अपने साथ ले चलने के लिए हठ करने लगी। अन्त में अपाहिज ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जब ब्राह्मण भोजन सामग्री लेकर लौटा तो ब्राह्मणी ने उससे अपाहिज को भी भोजन देने को कहा। भोजन करते में ब्राह्मणी ने पति से कहा—जब तुम घर से बाहर जाते हो तब मैं अकेली रह जाती हूँ, इसलिए इस अपाहिज को साथ लेते चलो। इसके रहने से मेरा जी बहला रहेगा। ब्राह्मण ने कहा--किन्तु मैं बहुत थका हुआ हूँ, इसलिए इसे ले कैसे चला जायगा। ब्राह्मण ने सोचा शायद इस प्रकार यह बला टल जाय। पर ब्राह्मणी स्वयं उसको अपने कन्धों पर बैठाकर ले चलने को तैयार हो गई। कहीं पत्नी अप्रसन्न न हो जाय इसलिए ब्राह्मण ने चुपचाप उसकी बात मान ली।

एक दिन जब कुएँ के पास बैठे तीनों विश्राम कर रहे थे, ब्राह्मण की झपकी लग गई। ब्राह्मणी ने तुरन्त अपाहिज की सहायता से ब्राह्मण को कुएँ में ढकेल दिया और अपाहिज को लेकर नगर को चली गई।

गश्त में घूमते हुए राजा के सिपाहियों ने देखा कि ब्राह्मणी कुछ गठरी सी लिए जल्दी-जल्दी चली जा रही है। वह उसे पकड़कर राजा के सामने ले गये। गठरी खुलवाकर जब देखी गई तो उसमें वही अपाहिज निकला। आश्चर्यचकित राजा के कारण पूछने पर ब्राह्मणी ने कहा--महाराज! यह मेरा पति है। इसके अपाहिज होने के कारण घरवाले मुझे कष्ट देते हैं जिससे ऊबकर मैं इन्हें लेकर घर से निकल पड़ी। रास्ते में आपके आदमी मुझे यहाँ पकड़ लाये।

राजा उसे परम साध्वी, पतिव्रता स्त्री समझकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे अपनी जीविका चलाने के लिए दो गाँव दान में दे दिये।

इसी समय ब्राह्मण, जिसे एक साधु ने कुएँ से निकाला था, ब्राह्मणी का पता लगाते लगाते वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही ब्राह्मणी घबड़ा गई और तुरन्त राजा से बोली—महाराज, यही वह मनुष्य है जो मुझे कष्ट देता है। राजा ने बिना कुछ विचारे ही उसे प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज न्याय होना चाहिए। यदि यह मुझे अपना शत्रु बताती है तो कम से कम मेरी जो वस्तु इसके पास है वह तो मुझे वापस दिलवा दीजिये।

राजा ने ब्राह्मणी से कहा—इसका जो कुछ तुम्हारे पास है, इसे दे दो।

ब्राह्मण ने कहा—मैंने अपनी आधी उमर तुमको दान में दी है, वह तुम मुझे वापस दे दो।

राजा के डर से ब्राह्मणी ने कहा—मैं तुम्हारा जीवन वापस करती हूँ। यह कहते ही वह गिरी और वहीं मर गई। अब तो राजा को बड़ा अचम्भा हुआ और उसने ब्राह्मण से सारी बातें समझाने को कहा।

ब्राह्मण ने राजा को सारी कथा सुना दी और राजा ने उसे क्षमा कर दिया, तथा पर्याप्त धन दिया जिसे लेकर वह अपने घर लौट गया।

यदर्थं स्वकुलं त्यक्तं जीवितार्द्धञ्च हारितम।
सा मां त्यजति निस्नेहा कः स्त्रीणां विश्वसेन्नरः॥

अर्थात्—जिसके लिए मैंने अपना घर छोड़ा तथा आधा जीवन भी त्यागा वही स्त्री मुझे निर्दयतापूर्वक छोड़ रही है। अतः कौन मनुष्य स्त्रियों का विश्वास करेगा।

बत्तीसवीं कथा

जैसे को तैसा

एक बूढ़ा किसान और उसकी तरुणी पत्नी एक गाँव में रहते थे। पति के बूढ़ा होने के कारण उसकी पत्नी सदैव नये प्रेमी ही खोजा करती थी। घर में उसका मन ही नहीं लगता था।

निकट ही में एक धूर्त्त रहता था, वह किसान-पत्नी के चरित्र को भाँप गया और उसने इससे लाभ उठाने की सोची। वह स्त्री के पास पहुँचा और उससे कहा—सुन्दरी! मैं विधुर हूँ। जब से मैंने तुम्हें देखा है, तुम्हारे प्रेम में दीवाना हो गया हूँ। कृपया मेरा प्रेम स्वीकार करो।

अन्धा तो बस आँखें ही चाहता था। किसान-पत्नी तुरन्त ही तैयार हो गई। उसने धूर्त्त से कहा—मेरे पति के पास पर्याप्त धन है, यदि तुम्हें स्वीकार हो तो चलो हम लोग उसे लेकर कहीं और चलें और चैन से जीवन वितायें। धूर्त्त चाहता ही यह था। वह तुरन्त तैयार हो गया और जैसा तय हो चुका था तड़के ही वह स्त्री और उसके सारे धन को लेकर चल दिया। रास्ते भर धूर्त्त यही सोचता जाता था कि अब इस स्त्री से कैसे पीछा छुड़ाया जाय। इतने में रास्ते में एक नदी आ गई। नदी देखते ही धूर्त्त को एक अच्छा बहाना मिल गया। उसने स्त्री से कहा—प्रिये! यह नदी गहरी है, इसलिए लाओ अपना सामान पहले मुझे दे दो। मैं इसे उस पार किसी सुरक्षित स्थान में रख आऊं, फिर आकर तुम्हें ले जाऊँगा साथ ही अपने कपड़े उतार दो वह भी वहीं रख आऊँ नहीं तो खराब हो जावेंगे। मूर्ख स्त्री ने उसे अपना सारा सामान, आभूषण और कपड़े भी उतार कर दे दिये। धूर्त्त सामान लेकर चम्पत हो गया।

घंटों बीत जाने पर जब वह न लौटा तो स्त्री का माथा ठनका। वह विवश होकर रोने लगी। इतने में एक शृगाली अपने मुँह में मांस का एक टुकड़ा दबाये उधर से निकली। शृगाली ने एक बड़ी सी मछली को नदी के किनारे पर पानी के बाहर उछलते देखा। लालच वश वह अपने मुँह का मांस वहीं छोड़ उधर को लपकी और मछली शृगाली की आहट

पाकर तुरन्त डुबकी लगा गई। शृगाली लज्जित हो रह गई। इधर मांस के टुकड़े को भूमि पर पड़े हुए आकाश में उड़ते हुए एक गिद्ध ने देखा उसे वह झपट्टा मारकर ले गया। वापस आकर जब शृगाली ने देखा कि यह मांस भी गया तो और भी लज्जित हुई और इधर-उधर देखने लगी।



किसान-पत्नी को उसकी हालत देखकर हँसी आ गई और उसने कहा--जो पास की छोटी वस्तु को छोड़कर बाहर की बड़ी वस्तु के लिए दौड़ता है उस लालची को दोनों ओर से खाली हाथ लौटना पड़ता है।

यह सुनकर शृगाली ने स्त्री की ओर देखा और उसकी हालत भाँपकर तुरन्त उत्तर दिया--धूर्त्तता कभी काम नहीं आती। जो औरों को ठगने का प्रयास करता है वह स्वयं ठगा जाता है।

स्त्री ने शर्मा कर सिर झुका लिया।

———

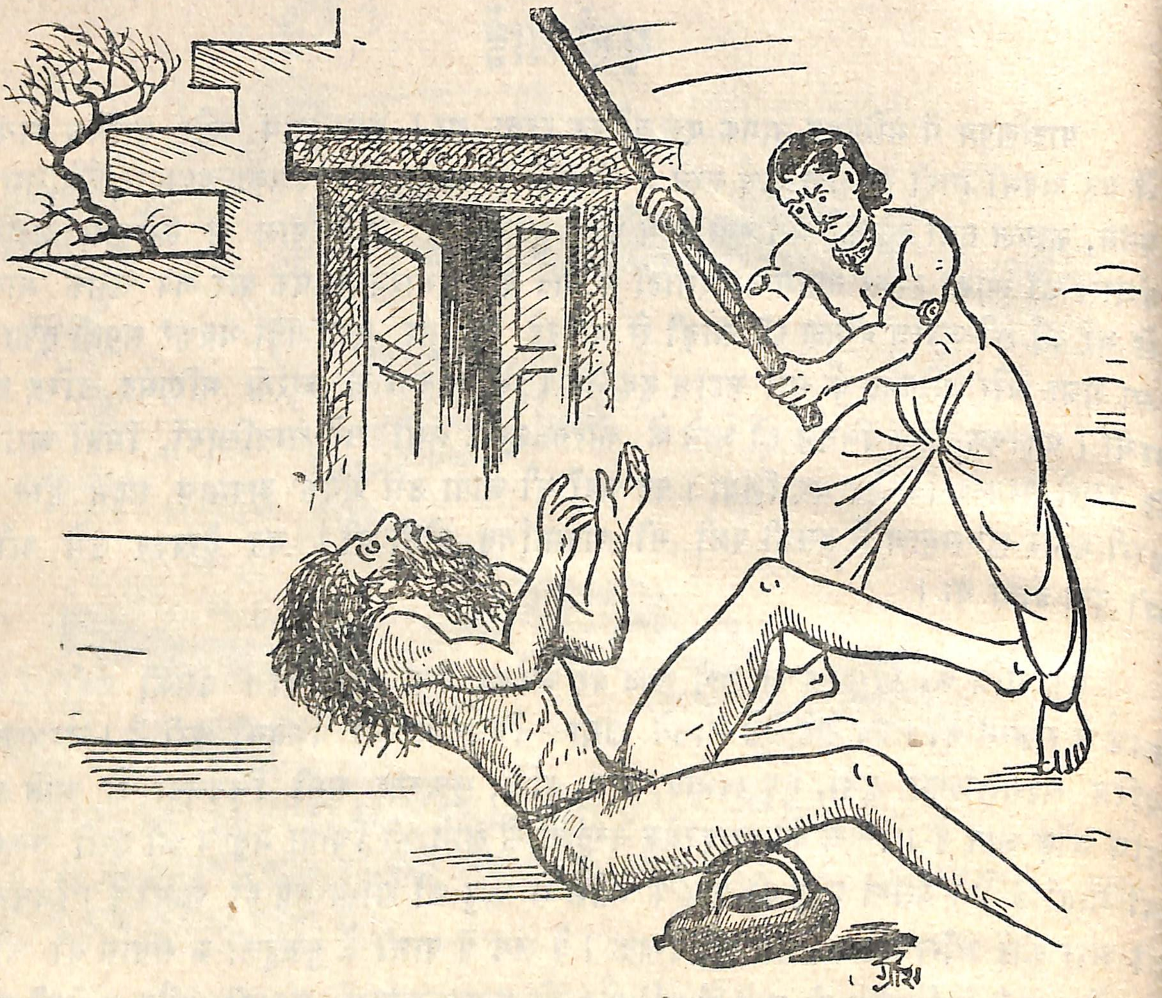
तेंतीसवीं कथा

मूर्ख नाई

पाटलिपुत्र में मणिभद्र नामक एक वणिक रहता था। दान-पुण्य और धार्मिक कार्यों में वह अपनी सारी सम्पत्ति खर्च करने में भी नहीं हिचकता था। उसका व्यापार, कलिंगापटम, कायल तथा कोरकई जैसे स्थानों में फैला हुआ था। उसके माल से लदे हुए जहाज बंगाल की खाड़ी होकर तमाम बन्दरगाहों में जाते थे। अभाग्यवश एक बार जब उसके माल से भरे कई सौ जहाज बंगाल की खाड़ी से जा रहे थे, तब एक बड़ा भयंकर समुद्री तूफान आ गया और मणिभद्र के सारे जहाज डूब गये। इस दुर्घटना के कारण मणिभद्र दरिद्र हो गया। एकाएक उसके निर्धन हो जाने के कारण उसके सभी सगे-सम्बन्धियों, मित्रों आदि ने उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। वह जहाँ भी जाता उसे अनेक अपमान सहने होते। इसी प्रकार स्त्री-समाज में उसकी पत्नी भी अपमानित होती थी। यह देखकर उसे और भी दुख होता था।

एक रात्रि को मणिभद्र खरखरी खाट पर अकेला लेटा हुआ था। उसकी पत्नी गृह-कार्य में संलग्न थी। वह लेटे-लेटे सोचने लगा—निर्धनता भी कितनी बुरी है। सम्मान, चरित्र, सहनशीलता, दया, मृदु स्वभाव, ज्ञान, बुद्धि, सुन्दरता सभी निर्धनता के आते ही साथ छोड़ जाते हैं। नित्य की आवश्यक वस्तुओं के लाने की चिन्ता मनुष्य को उसी प्रकार खा जाती है जैसे वसन्त ऋतु की हवा के झोंके से ऋतु की शोभा नष्ट हो जाती है। निर्धनों की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता। वे जग में पानी के बुलबुलों के समान ही जीते हैं और पानी में विलीन हो जाते हैं। निर्धन को उसका समाज, कुटुम्बी और पड़ोसी तक त्याग देते हैं और उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगते हैं। बड़े-बड़े विद्वान और उच्चवंशोत्पन्न भी निर्धन हो जाने के बाद महाधूर्त्त निर्धनों के द्वारों के दास हो जाते हैं। किन्तु धनी मनुष्य चाहे वह कितने ही घृणित और बुरे काम को क्यों न करता हो समाज में पूर्ण सम्मान पाता है। दुख की बात है। ऐसे जीने से तो मर जाना अच्छा है और अवश्य ही कल मैं किसी जंगल में जाकर आत्महत्या कर लूँगा।

इस प्रकार तरह-तरह की बातें सोचता हुआ वह सो गया और उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा कि एक नग्न जैन साधु उसके पास आये और उससे कहा—मणिभद्र ! आत्महत्या का विचार त्याग दो। पूर्व जन्म में जो कर्म मनुष्य करता है उसका फल मनुष्य को दूसरे जीवन में अवश्य प्राप्त होता है। पूर्व जन्म में तुमने पवित्र हृदय से एक नग्न जैन साधु को एक लाख स्वर्णमुद्रायें दान की थीं, जो उसने गरीबों को बाँटने के लिए ली थीं। मैं ही वह



साधु हूँ। दान पाने के बाद मेरे मन में उस स्वर्ण के प्रति मोह हो गया और मैंने वे मोहरें बाँटी नहीं, बल्कि अपने पास रख लीं। उस दिन से आज तक मेरा मन उसी माया में फँसा है और अब मुझे अपनी भूल मालूम हुई, साथ ही तब से मेरे हृदय से पाप दूर ही नहीं होता और न दूर होगा जब तक कि तुम्हारा धन तुम्हें वापस न कर दूँ। इसलिए कल मैं तुम्हारे पास आऊँगा, सूर्योदय के समय ठीक इसी रूप में। मैं तुमसे भीख माँगूँगा, जिससे तुम मुझे तुरन्त

पहिचान जाओगे। तुम मुझे देखते ही बिना किसी हिचकिचाहट के एक डण्डे से मेरे सिर पर चोट करना, उसके लगते ही मैं सोने का हो जाऊँगा। इससे तुम तो पहले ही की तरह धनवान हो जाओगे और मैं तुम्हारा स्वर्ण तुम्हें लौटाकर माया के बन्धन से मुक्त होकर देवलोक चला जाऊँगा।

स्वप्न देखकर मणिभद्र की आँखें खुल गईं। अस्तु, वह सोचने लगा कि क्या यह सच भी हो सकता है या केवल स्वप्नमात्र ही है। देखना चाहिए कि क्या होता है ? ऐसा सोचकर उसने फिर किसी प्रकार रात बिताई और सवेरा होते ही बहुत तड़के उठकर स्नान व पूजन करके एक डंडा लेकर बैठक में बैठ गया।

उसी दिन सबेरे तड़के एक नाई भी मणिभद्र के यहाँ उसकी पत्नी के नख काटने और महावर लगाने आया। वहीं बैठक के पास बरामदे ही में नाई ने वणिक-पत्नी के नाखून काटे। इसी समय वह जैन साधु आ गया, मणिभद्र ने उसे तुरन्त पहिचान लिया। तुरन्त ही डंडा उठाकर उसने साधु के सिर में मारा। डंडे की चोट लगते ही साधु भूमि पर गिरकर मर गया। तुरन्त ही उसका शरीर सोने का हो गया। यह देखकर मणिभद्र बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसका मन नाच उठा। उसकी पत्नी तथा नाई यह जादूगरी सी देखकर स्तंभित से रह गये। मणिभद्र उस सोने की मूर्ति को उठाकर अपने घर में ले गया और उसकी एक उँगली काटकर नाई को पुरस्कार में दी और उससे इस बात को कहीं और न कहने की चेतावनी दे दी। नाई ने न कहने का वादा कर घर का रास्ता लिया।

घर जाते हुए मार्ग में नाई ने सोचा—यह तो अब सिद्ध हो ही गया कि नग्न जैन साधु को डण्डा मारा जाय तो वह सोने का हो जाता है। और इसका प्रमाण तो मुझे मिल ही चुका है। बड़ा भाग्यहीन हूँ मैं जो यह बात मुझे पहिले न मालूम हुई अन्यथा मैं अपना जीवन दूसरों के बालों ही के काटने में क्यों गँवाता कभी का धनवान न बन गया होता। ठीक है हम नाई लोग धनोपार्जन में बनियों से अवश्य ही गये-बीते हैं। मैं सदैव सोचा करता था कि लोग पलक मारते धनवान कैसे बन जाते हैं। आज पता चला इसका भेद। धनवान बनने के लिये सिर्फ एक मोटा डंडा, एक नग्न जैन साधु और एक चोट करने की ही आवश्यकता मात्र है। यह नीच बनिये इस भेद को इसीलिये इतना छिपा कर रखते हैं कि जिसमें कोई दूसरा कहीं धोखे से अमीर न हो जाय। यह भेद तो मुझे भाग्यवश ही आज पता चल गया और अब मैं जल्दी से इससे लाभ उठाने का यत्न करूँगा। कल प्रातः ही मैं समस्त जैन मठों के साधुओं को अपने यहाँ आमंत्रित करूँगा और फिर प्रत्येक के सिर पर डण्डों का प्रहार करके उन्हें मार डालूँगा और इस प्रकार अपार धन प्राप्त कर लूँगा।

फिर तो मैं निश्चिन्त होकर दोनों हाथ खोलकर धन खर्च करूँगा। यदि यह कभी समाप्त भी हो जायगा तो तुरंत ही और साधुओं को मार कर फिर सोना बना लूँगा।

मन में यह विचार पक्का करके नाई ने कई डण्डे एकत्रित किये और उनमें खूब तेल इत्यादि चुपड़कर मजबूत किया। फिर उन्हें घर के बड़े कमरे में कोने में छिपाकर रख दिया। इसके बाद उसने उस दिन के बीतने की बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा की। किसी प्रकार बड़ी कठिनाई से उसने वह दिन और रात बिताई। दूसरे दिन प्रातः होते ही वह नहा-धोकर जैन मठ पहुँचा और भगवान् महावीर की मूर्ति के चारों ओर परिक्रमा करके बोला—हे दिगम्बर जैन साधु तुम धन्य हो, संसार का कल्याण तुम्हीं से होता है। तुम ज्ञान देकर सबका अज्ञानान्धकार दूर करते हो तथा सन्मार्ग पर लाते हो।

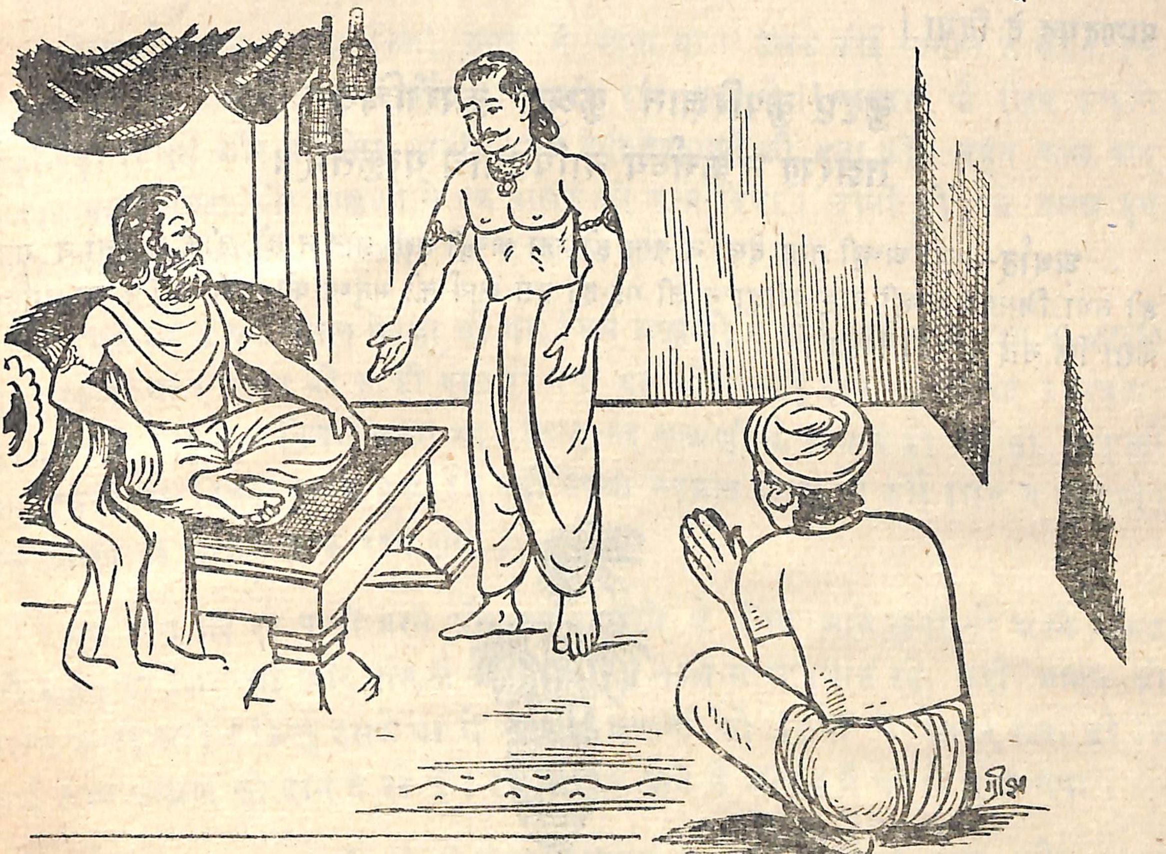
स्तुति कर चुकने के बाद वह मठाध्यक्ष साधु के पास गया और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। साधु ने उसे आशीर्वाद दिया। इसके बाद वह हाथ जोड़कर बोला—महात्मन्! आपकी सेवा में इस दास की यह प्रार्थना है कि आज आप तथा इस मठ के अन्य सब साधु इस दास के घर भोजन करके इसे कृतार्थ करें। महात्मा ने कहा—भाई! तुम अज्ञानी हो, इसी लिये शायद तुम यह नहीं जानते कि हम लोग किसी के यहाँ साधारण ब्राह्मणों की तरह भोजन करने नहीं जाते। हमें तो जब कभी बहुत ही अधिक भूख सताती है तो केवल इस शरीर की रक्षा मात्र के लिये हम किसी अपने धर्मावलम्बी भाई के यहाँ चले जाते हैं और वहाँ हमें जो भी कुछ रूखा-सूखा मिल जाता है खा लेते हैं। इसलिए तुम अपने घर लौट जाओ।

नाई ने कहा—क्षमा कीजियेगा, अब मैं आप लोगों के इस नियम को समझ गया। फिर भी मेरे घर पर बहुमूल्य कपड़े, सामान तथा गरीबों को बाँटने के लिए धन है। वे सारे कपड़े आपके यहाँ धर्मग्रन्थों की जिल्दों में चढ़ाये जा सकते हैं और मेरे विचार में शायद इन्हें ले लेने से आपको नियमोल्लंघन दोष भी न लगेगा।

जैन साधुओं ने कहा—हाँ यह लेने में हमें कोई हानि नहीं क्योंकि यह चीजें हमारे शरीर के काम तो आवेंगी नहीं।

वे सारे साधु नाई के साथ उसके घर चले गये। नाई ने उन्हें अपने कमरे में बैठाया और बाहर का द्वार बन्द कर दिया। इसके बाद कोने से डण्डा उठाकर उसने उन लोगों के सिर पर अपनी पूरी शक्ति के साथ मारना शुरू कर दिया। एकाएक नाई के इस दुर्व्यवहार से वे सब स्तम्भित रह गये और घबड़ा गये तथा कमरे में इधर-उधर भागने तथा आत्मरक्षा

के लिए "दौड़ो-बचाओ" "दौड़ो-बचाओ" कहकर चिल्लाने लगे। पर नाई कस-कसकर उनको लाठियाँ जमाता रहा यहाँ तक कि दो साधु मर गये और शेष साधु उसके चरणों पर लोट गये और बोले—भाई हमने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाड़ा है, जिसकी तुम हम लोगों को यह सजा दे रहे हो। मरने के बाद भी जब वे दो साधु सोने के न हुए तो उसने और भी कसकर हाथ चलाये, और उन साधुओं से कहा—यदि अपना भला चाहते हो तो चुपचाप शान्ति के साथ मर जाओ और सोना बन जाओ, मैं तुम लोगों की चालाकी न चलने दूँगा।



साधुओं का रोना-चिल्लाना सुनकर बाहर के आदमियों ने दरवाजा तोड़ दिया और उन अधमरे साधुओं की रक्षा की तथा नाई को पकड़ लिया और न्यायाधीश के सामने उपस्थित कर दिया।

न्यायाधीश ने नाई से पूछा—तुमने कानून के विरुद्ध कार्य क्यों किया ?

उसने कहा—कानून के विरुद्ध यह काम कैसे हुआ, मैंने तो वही किया जो वणिक मणिभद्र ने कल किया था। बस अन्तर इतना ही रहा कि उसने सफलतापूर्वक कार्य किया और मुझे सफलता नहीं मिली।

न्यायाधीश ने पूछा—आखिर इससे तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

उसने कहा—कल मैंने अपनी आँखों से मणिभद्र को एक जैन साधु के सिर पर लाठी मारते देखा। साधु मर गया और उसका शरीर तुरन्त ही सोने का हो गया।

न्यायाधीश ने मणिभद्र को बुलाकर सारा हाल पूछा और उसने स्वप्न से लेकर अन्त तक का पूरा किस्सा सुना दिया। न्यायाधीश ने सारा हाल सुनने के बाद नाई को प्राणदण्ड दे दिया।

कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम्।
तन्नरेण न कर्त्तव्यं नापितेनात्र यत्कृतम्॥

अर्थात्—जो अच्छी तरह देखा न गया हो, जो अच्छी तरह ज्ञात न हो, ठीक से सुना न गया हो तथा जिसकी अच्छी तरह परीक्षा न ली गई हो उस कार्य को मनुष्य को कभी नहीं करना चाहिए जैसा कि नाई ने यहाँ किया।

चौंतीसवीं कथा

स्वामिभक्त नेवला

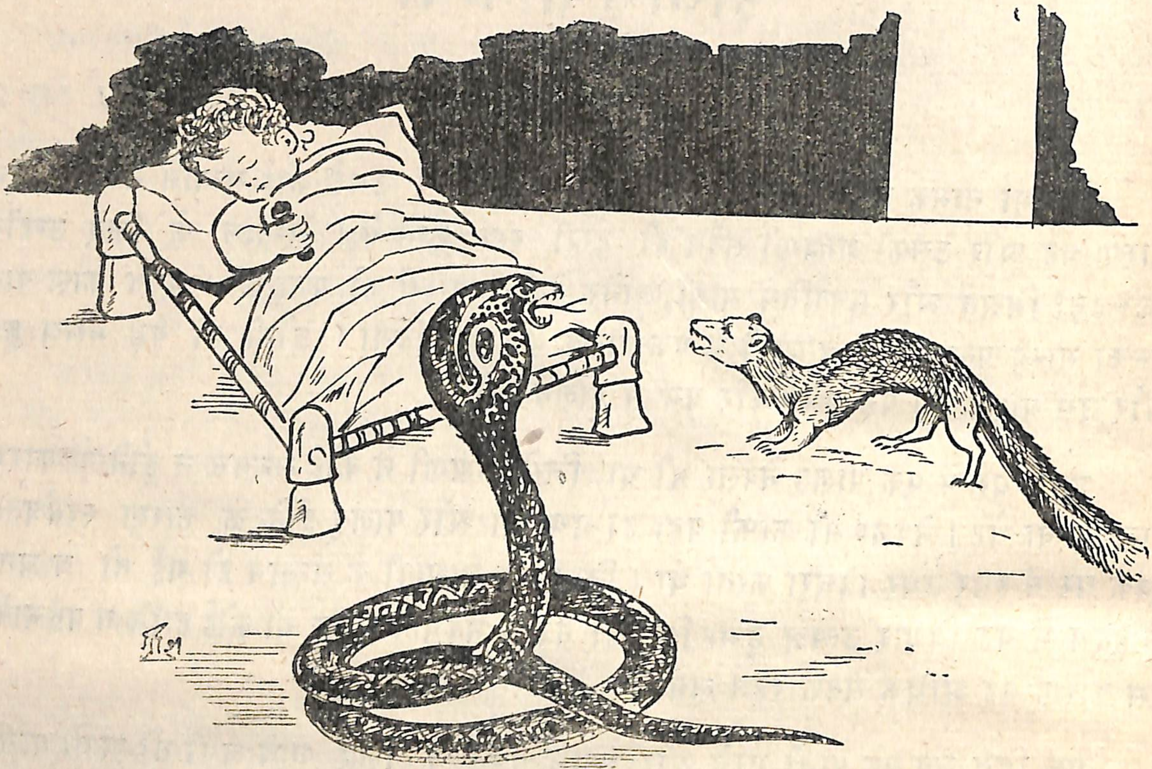
देवशर्मा नामक ब्राह्मण किसी नगर में रहता था। उसके कोई सन्तान न थी। इस कारण वह और उसकी ब्राह्मणी सदैव ही दुखी रहा करते थे। सन्तान के लिए उन्होंने बड़ी-बड़ी मिन्नतें और मनौतियें मानीं, अनेक देवी-देवताओं की पूजा की। बहुत काल बाद उनका भाग्य पलटा और ब्राह्मणी ने एक बालक को जन्म दिया। दोनों ही बड़े प्रसन्न हुए और उस बालक को बड़े प्रेम और यत्न से पालने लगे।

उनके घर में एक पालतू नेवला भी था, जिसे ब्राह्मणी ने कोई सन्तान न होने के कारण पाल रक्खा था। नेवला भी काफी बड़ा हो गया था और पालतू होने के कारण स्वतंत्रता-पूर्वक घर में इधर-उधर विचरा करता था। किन्तु जब ब्राह्मणी के सन्तान हो गई तो ब्राह्मणी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं नेवला नवजात शिशु को कोई हानि न पहुँचावे। इस कारण वह अधिक सतर्क रहने लगी।

एक दिन जब वह पानी भरने और स्नान करने के लिए जाने लगी तो अपने बालक को पलँग पर लिटा गई और पति से कहती गई कि नेवले से सावधान रहे, कहीं बालक को हानि न पहुँचा दे। किन्तु उसके घर से जाते ही ब्राह्मण को किसी ने आकर खबर दी कि कोई राजा ब्राह्मण को दान दे रहे हैं। वह भी कुछ पाने के लालच में घर से चला गया।

थोड़ी देर बाद एक साँप किसी बिल से निकल कर कमरे में रेंगने लगा और बालक के पलँग की ओर जाने लगा। नेवला वहीं बैठा था। साँप से स्वाभाविक शत्रुता होने के कारण नेवले ने देखते ही उस पर आक्रमण किया और कुछ ही देर में उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ब्राह्मणी के आने की आहट पाते ही वह प्रेमवश ब्राह्मणी की ओर दौड़ा। ब्राह्मणी ने नेवले के मुँह और पंजों तथा शरीर पर तमाम रक्त लगा देखा तो उसने सोचा कि अवश्य इसने मेरे बालक को खा लिया। यह सोचकर उसने मारे क्रोध के पानी से भरा घड़ा नेवले के ऊपर गिरा दिया। बिचारा नेवला तुरन्त ही मर गया। उसे वहीं उसी हालत में छोड़कर वह भागी हुई अपने बच्चे के पास पहुँची। पर वहाँ जाकर उसने बच्चे को आराम से सोता

हुआ पाया और उसके पलँग के चारों ओर काले भुजंग साँप के टुकड़े पड़े थे। अब तो ब्राह्मणी को नेवले की मृत्यु का बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह हृदय में अपने को इस कुकृत्य के लिए धिक्कारने लगी।



ब्राह्मण जब भिक्षा लेकर घर लौटा और उसने अपनी पत्नी को नेवले की मृत्यु पर रोते देखा तो उससे सारा हाल पूछा। इस पर वह बोली—तुम बड़े लालची हो, यदि आज तुमने तनिक अपनी लालची प्रवृत्ति को रोककर घर के बाहर कदम न निकाला होता तो ऐसा स्वामिभक्त नेवला मेरे हाथों द्वारा न मारा जाता। यह कहकर उसे सारा हाल सुनाया। ब्राह्मण भी यह घटना सुनकर बहुत दुखी हुआ।

इसलिए यह ठीक ही कहा गया है—

अपरीक्ष्य न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं सुपरीक्षितम्।
पश्चाद्भवति सन्तापो ब्राह्मण्यां नकुलार्थतः॥

अर्थात—कोई कार्य बिना विचारे नहीं, अपितु अच्छी तरह परीक्षा लेकर करना चाहिए अन्यथा पश्चात्ताप करना पड़ता है जिस प्रकार नेवले के लिए ब्राह्मणी को करना पड़ा।

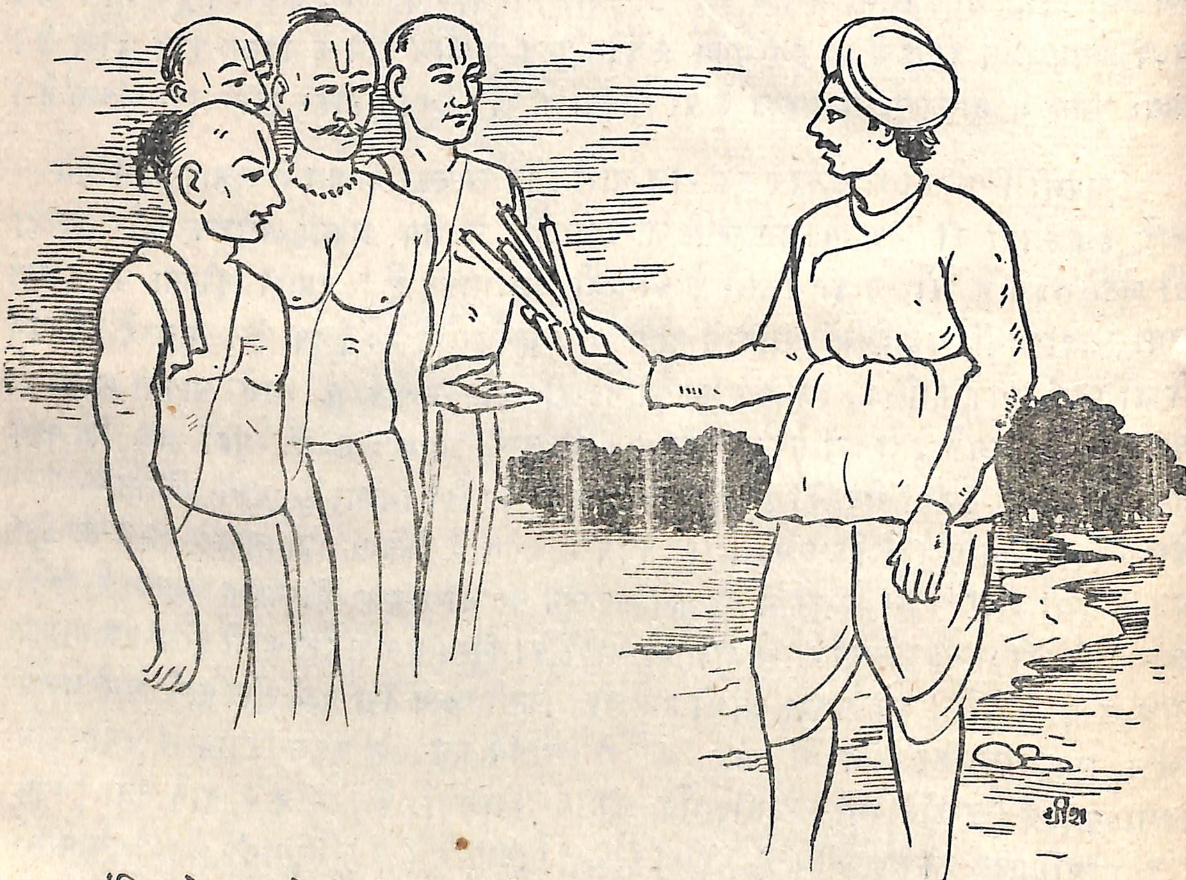
पैंतीसवीं कथा

लोभी ब्राह्मण

अल्पलोभी, मितलोभी, अतिलोभी और अत्यन्त लोभी नामक चार बहुत ही निर्धन ब्राह्मण थे। इन चारों में परस्पर बड़ी मित्रता थी। इन लोगों की निर्धनता ने उन्हें पागल सा बना दिया था। किसी ने सच कहा है—बुद्धि, विद्या तथा बल के रहते हुए भी निर्धन पुरुष अपमानित होता है पर इन गुणों से हीन पुरुष धनवान होने के कारण पूज्य होता है। अतः जंगल में जाकर रहना अच्छा है पर भाइयों के बीच निर्धन होकर रहना नहीं अच्छा है।

अपनी निर्धनता से ऊबकर एक रोज चारों मित्र मिलकर आपस में सलाह करने लगे—भाई, हम लोगों की निर्धनता हमें खाये जा रही है। न हम अपना भोजन और कपड़ा ही जुटा सकते हैं और न हम किसी के काम ही आ सकते हैं। हमारी दीनता के कारण सभी सम्बन्धियों, पड़ोसियों आदि ने हमसे सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। सच है, निर्धन से तो स्वयं उसके मालिक, जिसकी वह ईमानदारी और सचाई के साथ चाकरी करता है, रुष्ट रहते हैं। उनके बाल-बच्चे तक अवसर पाते ही उन्हें त्याग देते हैं, यहाँ तक कि स्वयं उनकी पत्नी भी उनकी सेवा रुचि और प्रेम से नहीं करती। धिक्कार है ऐसी निर्धनता पर। कैसे आश्चर्य की बात है कि धनी और निर्धन में जगत में कितना बड़ा अन्तर हो जाता है। धन के द्वारा और संसार के बुरे से बुरे कर्म कर लेने पर भी मनुष्य निष्कलंक रहता है और उसके बाद भी सारी दुनिया उसके गुण ही गाती है। बिना धन के मनुष्य की बुद्धि तक उसका साथ छोड़ देती है। इस कारण आओ हम लोग किसी अन्य देश चलें और वहाँ धनोपार्जन करें। यह तय कर लेने के बाद अब वे सोचने लगे कि किस उपाय से धनोपार्जन करना चाहिए। उन्होंने कहा--धनोपार्जन की ६ विधियाँ हैं। (१) दान तथा भिक्षा (२) न्यायालय की दलाली (३) खेती (४) विद्यादान (५) बेईमानी (६) व्यापार। लाभदायक व्यवसाय के ७ भेद हैं—(१) कम वजन के बाँटों से कम तौलना (२) मूल्य बढ़ाना (३) दल्लाल रखना (४) बँधे ग्राहक रखना (५) गोदाम में माल भरकर कुछ लोग मिलकर व्यापार करें (६) बिसाती अथवा गन्धी का व्यापार (७) विदेशों से व्यापार। पर यह कार्य नीच हैं अतः व्यापार ही करना चाहिए।

वे लोग इस प्रकार से अपने मन में धनोपार्जन की ठानकर घर से निकल पड़े और अवन्तिनगरी पहुँचे। वहाँ शिप्रा नदी में स्नान कर तथा भगवान शंकर के मन्दिर में पूजा कर वहाँ से आगे बढ़े। मार्ग में भैरवानन्द नामक एक तांत्रिक से उनकी भेंट हो गई और उसके पूछने पर इन लोगों ने उससे कहा—हम लोग जिज्ञासु यात्री हैं और तांत्रिक शक्ति की खोज में घूम रहे हैं जिसके द्वारा हम लोग खूब धनोपार्जन कर सकें और इसीलिए हम लोगों ने यह तय कर लिया है कि हम खोजते-खोजते मर भले ही जायँ पर घर वापस नहीं लौटेंगे। क्योंकि हमें विश्वास है—परिश्रम से सफलता मिलती है। बिना परिश्रम तथा प्रयत्न के कुछ नहीं होता। इसलिए आप हम लोगों पर कृपा करके हमें अपनी कुछ तांत्रिक विद्या सिखलाइए क्योंकि यह हमें भली भाँति विदित है कि आपमें अद्भुत शक्ति है।



तांत्रिक ने उन लोगों की जब इतनी दृढ़ता देखी तो वह उन लोगों से प्रसन्न हो गया और अपनी तांत्रिक शक्ति से चार मोमबत्तियाँ बनाकर एक-एक चारों को दी और कहा—जाओ इन्हें लेकर तुम हिमालय के उत्तरी भाग की ओर चले जाओ। मार्ग में जहाँ पर भी तुम्हारे किसी के हाथ से बत्ती गिर जायगी वहीं उस बत्तीवाले को खजाना मिलेगा।

उसके कथनानुसार वे लोग उसी दिशा में चल दिये। मार्ग में चलते-चलते अल्पलोभी की बत्ती एक स्थान पर गिर गई। तुरन्त ही उसने वहाँ का निरीक्षण किया और उसे पता चला कि उस भूमि में ताँबे की खान है। उसने अपने साथियों से कहा—लो भाई हमारी आशा सफल हुई, आओ अब इसे हम लोग मिलकर अपने लाभ का मार्ग बनायें। पर अन्य लोगों ने कहा—अरे मूर्ख भला ताँबा भी कहीं किसी की दरिद्रता दूर करता है ? आओ चलो आगे चलें। किन्तु अल्पलोभी ने कहा—भाई ! अब मैं अपने भाग्य से मिली वस्तु छोड़कर नहीं जा सकता।

अन्य साथी उसकी बात सुनकर वहाँ से चल दिये। आगे मार्ग में मितलोभी के हाथ की बत्ती गिरी और उसे स्थान पर चाँदी की खान मिली। उसने भी अन्य लोगों से पहले की भाँति वहीं टिकने को कहा तो दूसरों ने कहा—अरे मूर्ख, पहले ताँबा निकला अब चाँदी और आगे बढ़ेंगे तो सोना निकलेगा। आओ आगे चलें। पर वह वहीं रुक गया।

उसे वहीं छोड़कर अन्य दो आगे बढ़े। मार्ग में अतिलोभी की बत्ती गिरी। उसे वहाँ पर सोने की खान मिली। पहले ही की तरह फिर एक ने दूसरे से ठहरने को कहा। दूसरे ने कहा—अरे ! अवश्य ही आगे जवाहरातों की खान मिलेगी। पर अतिलोभी आगे न गया और अत्यन्त लोभी जवाहरातों के लोभ में आगे बढ़ता ही गया।

चलते-चलते उसका बदन थककर चूर हो गया और प्यास से उसका मुँह सूखने लगा। फिर भी लोभ उसे आगे खींचे लिये जा रहा था। थोड़ा और आगे जाने पर उसने देखा कि एक चट्टान पर एक मनुष्य खड़ा है जिसके शरीर से रक्त टपक रहा है, क्योंकि उसके सिर पर एक चर्खी रक्खी हुई है जो घूम रही है। उसकी ऐसी दयनीय हालत देखकर अत्यन्त लोभी भी सब कुछ भूल गया और भागा हुआ उसके पास गया और पूछा—भाई ! आप इस हालत में क्यों खड़े हैं और यह चर्खी आपके सिर पर क्यों घूम रही है। साथ ही यदि आपको यहाँ किसी जलाशय का पता हो तो मुझे बताइए, क्योंकि मुझे बड़ी प्यास लगी है।

जैसे ही ब्राह्मण ने यह शब्द कहे वह चर्खी उस मनुष्य के सिर से उठकर ब्राह्मण के सिर पर बैठ गई। यह देखकर ब्राह्मण घबड़ा गया और उस आदमी से इसका कारण पूछा। उसने कहा—यह चर्खी ठीक इसी प्रकार मेरे सिर पर बैठी थी। ब्राह्मण ने पूछा—भाई ! अब यह कब दूर होगी। उसने कहा—जब कभी कोई तुम्हारी ही तरह यह तांत्रिक बत्ती लेकर तुम्हारे पास आकर तुमसे भी ऐसे ही प्रश्न करेगा, जैसे तुमने मुझसे किया था, तभी यह उसके सिर पर जा बैठेगी।

ब्राह्मण ने पूछा—यह तुम्हारे सिर पर कितने समय से थी ?

उसने पूछा—अब कौन राजा राज्य कर रहा है ?

ब्राह्मण ने कहा—वीणा वत्सराज।

उसने कहा—भाई ! यह तो मैं ठीक कह नहीं सकता किन्तु हाँ जब मैं यहाँ आया था उस समय महाराज राम का राज्य था। मैं भी तुम्हारी ही तरह दरिद्रता से पीड़ित था और किसी प्रकार एक तांत्रिक बत्ती प्राप्त कर यहाँ आया। यहाँ आकर मैंने एक पुरुष को देखा जिसके सिर पर यह चर्खी घूम रही थी। उसे देखकर मैंने भी तुम्हारी ही तरह उससे यही प्रश्न किया और तुरन्त ही यह चर्खी मेरे सिर पर आ बैठी। मैं तुम्हें ठीक ठीक यह नहीं बता सकता कि इस बात को हुए कितनी शताब्दियाँ बीत गईं।

ब्राह्मण ने कहा—कृपया यह तो बताइए कि आपको भोजन कहाँ से और किस प्रकार मिलता था।

उसने कहा—मित्र ! कुबेर ने इस डर से कि कहीं लोग उसके खजाने को चुरा न ले जायँ यह नियम निकाला कि जिससे कोई भी तांत्रिक यहाँ तक न पहुँचे। यदि कोई किसी प्रकार यहाँ तक पहुँच भी जाय तो केवल उसे इस चर्खी का दण्ड ही मिलेगा। न तो उसे भूख लगेगी, न प्यास सतायेगी और न उसकी मृत्यु ही होगी। अच्छा, अब कृपया मुझे चलने की आज्ञा दीजिए। आपने मुझे एक बहुत बड़े कष्ट से छुटकारा दिया है। अब मैं घर जा रहा हूँ। यह कहकर वह चला गया।

इधर अतिलोभी ने जब यह देखा कि अत्यन्त लोभी अब तक लौटकर ही न आया तो उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह उसके पदचिह्नों के द्वारा खोजते-खोजते वहाँ आ पहुँचा। उसने देखा कि उसका मित्र चट्टान पर मूर्तिवत खड़ा है और एक चर्खी उसके सिर पर नाच रही है जिसके कारण उसके शरीर से खून टपक रहा है। उसकी यह दशा देखकर वह बहुत दुखी हुआ और इसका कारण पूछा। उसने कहा—भाई ! यह मेरे भाग्य का फल है। पर दूसरे ने कहा—किन्तु भाई ! तनिक विस्तारपूर्वक बताओ कि यह सब हुआ कैसे ? उसके मित्र ने तब उसे सम्पूर्ण कथा सुनाई। जिसको सुनकर उसके मित्र ने उसे बहुत धिकारा और कहा—मैंने तुमको यहाँ आने से बहुत रोका पर लोभ ने तुम्हें अन्धा कर दिया और अब तुम्हें उसका प्रत्यक्ष फल मिल गया।

इसके अतिरिक्त तुम्हें अपने मित्र की सलाह नहीं ठुकरानी चाहिए थी। लेकिन लालच बहुत बुरी वस्तु है। उसने ही तुम्हें मित्र की भली सलाह भी न मानने पर विवश किया। इस प्रकार नाना प्रकार से उसे समझा-बुझाकर अतिलोभी ने कहा—मेरे ठहरने से तुम्हें अब कोई लाभ नहीं हो सकता और तुम्हारी यह दुर्दशा देखकर मेरा हृदय भी दुखी होता है इसलिये अब मैं जाता हूँ। इसके बाद वह अपने मित्र से बिदा लेकर चला गया। किसी ने सच कहा है कि—

अतिलोभो न कर्त्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत्।
अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके॥

अर्थात—अधिक लोभ नहीं करना चाहिए तथा लोभ का त्याग भी नहीं करना चाहिए। अधिक लोभ करनेवाले के सिर पर चक्र घूमता है।

छत्तीसवीं कथा

शेर का जीवन दान

वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारका॥

अर्थात्—विद्या से बुद्धि श्रेष्ठ है; विद्वान् होते हुए भी बुद्धिहीन मनुष्य नष्ट हो जाते हैं। जैसे सिंह बनाने वाले विद्वान् नष्ट हो गये।

चार ब्राह्मण नवयुवक थे जिनमें आपस में घनिष्ठ मित्रता थी। उनमें से तीन तो उद्भट विद्वान् थे किन्तु उनमें बुद्धि की कमी थी। चौथा बहुत ही चतुर था किन्तु पढ़ा-लिखा कम था।

एक रोज सबने आपस में तय किया कि विद्या तो हम लोगों ने अत्यधिक प्राप्त कर ली अब कहीं चलकर किसी राजा का आश्रय प्राप्त करके धनोपार्जन करना चाहिए। सब इस बात पर सहमत हो गये। एक ने जो उन सबमें बड़ा था, उसने कहा कि भाई यह चौथा हम लोगों की अपेक्षा कुछ भी पढ़ा नहीं है इसलिये इसे वहीं छोड़ दो। एक तो तैयार हो गया पर दूसरे ने कहा नहीं भाई, यह हम लोगों का बचपन का साथी है। जब आज तक इसका हमारा साथ नहीं छूटा, तो अब हम ऐसे समय में इसे क्यों त्याग दें। इसे भी साथ चलने दो और जो कुछ हम उपार्जन करेंगे उसमें इसे भी भाग देंगे।

वे लोग वहाँ से चल दिये। रास्ते में एक जंगल में होकर वे लोग गुजरे। वहां एक पेड़ के नीचे इन लोगों को एक मरे शेर की हड्डियाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी मिलीं। एक युवक ने कहा—भाई, क्या सुन्दर अवसर हम लोगों को प्राप्त हुआ है। आओ हम लोग आज अपनी विद्या की परीक्षा यहीं करके देख लें फिर आगे बढ़ेंगे। यह एक जानवर की हड्डियाँ पड़ी हैं, आओ हम लोग अपनी विद्या के बल से इसे जीवित कर दें।

एक युवक ने कहा—मैं तो केवल इसके ढाँचे मात्र को ठीक से बना सकता हूँ। दूसरे ने कहा—मैं इसे मांस-रक्त और चर्म प्रदान कर सकता हूँ। तीसरे ने कहा—मैं इसे प्राण दान दे सकता हूँ। पर चौथे ने कहा—मित्रो, यह शेर है—यदि तुमने इसे जीवन दिया तो यह हममें से एक एक को खा जायगा।

यह सुनकर पहले ने कहा—मूर्ख कहीं के! तुम्हारी इस बात के लिए हम लोग अपनी विद्वत्ता की परीक्षा थोड़े ही रोक देंगे।

चौथे ने कहा—अच्छा तनिक ठहरो--मैं पहले इस पेड़ पर चढ़ जाऊँ तब तुम इसे जीवन दान देना। यह कहकर वह पेड़ पर चढ़ गया। तब उसके मित्रों ने उस सिंह को जीवित कर दिया।



जीवित होते ही सिंह ने तीनों युवकों को खा लिया, केवल चौथा जो पेड़ पर चढ़ गया था, वही बचा। जब सिंह वहाँ से चला गया तब चौथा पेड़ से उतर कर अपने घर चला गया।

———

सैंतीसवीं कथा

सहस्त्रबुद्धि, शतबुद्धि और एकबुद्धि

किसी तालाब में सहस्त्रबुद्धि और शतबुद्धि नामक दो मछलियाँ तथा एकबुद्धि नामक एक मेढक अपने अनेक जाति और सम्बन्ध वालों के साथ रहते थे। तीनों में घनिष्ठ मित्रता थी। ये लोग आपस में खेल-कूद कर अपना समय आनन्द से बिताते थे।

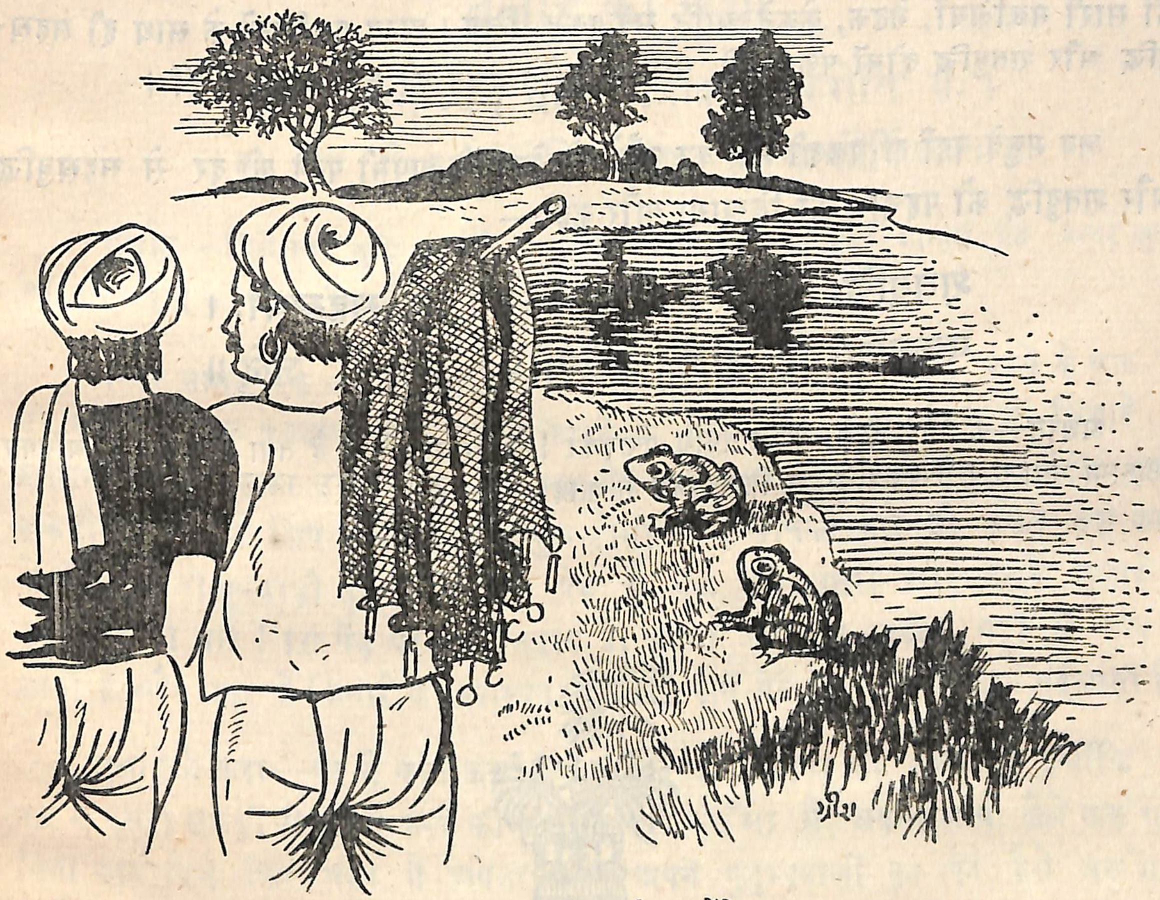
सूर्यास्त के समय एक दिन ये तीनों तालाब के किनारे उथले पानी में खेल रहे थे। उधर से कुछ मछली पकड़ने वाले निकले जो आपस में कुछ बातचीत करते जा रहे थे। यह लोग उन्हें देखकर भयभीत होकर मौन हो गये और उनकी बातें ध्यान देकर सुनने लगे। एक मछुवे ने इनके तालाब की ओर संकेत करके कहा—इस तालाब में ऐसा मालूम पड़ता है कि अगणित मछलियाँ रहती हैं। कल प्रातः ही हम लोग इस तालाब में मछली मारने आवेंगे। यह बातचीत करते हुए वे लोग चले गये।

उन लोगों की बातचीत सुनकर यह सबके सब मौन हो गये और आपस में सलाह करने लगे। पहले मेढक ने पूछा—बताओ भाई अब क्या करना चाहिए ?

सहस्त्रबुद्धि ने हँसकर कहा—अरे भला इस बात को सुनकर इतना घबराने की क्या बात है। केवल सुनकर ही तो हम यह मान नहीं सकते कि वे आवेंगे ही जब तक कि वे वास्तव में न आ जायँ। यदि वे लोग आ भी गये तो मैं तुम्हारी और अपनी रक्षा अपनी बुद्धि से कर लूँगा क्योंकि मुझे जल के अनेकों दाँव मालूम हैं।

शतबुद्धि ने कहा—हाँ सहस्त्रबुद्धि की बात ठीक है। जहाँ वायु तथा प्रकाश का प्रवेश नहीं है वहाँ बुद्धि प्रविष्ट हो जाती है।

केवल किसी बात को सुनकर ही हम लोग अपना जन्मस्थान थोड़े ही छोड़ सकते हैं। हम लोग कहीं नहीं जायँगे और तुम्हारी रक्षा भी हम अपनी युक्ति से कर लेंगे।



कल हम मछली मारने आवेंगे।

मेढक ने कहा मगर भाई मेरे पास तो एक ही बुद्धि है और वह मुझे यहाँ से भाग चलने को कहती है। हम और हमारी स्त्री तो आज रात ही को किसी अन्य स्थान के लिये कूच कर देंगे।

रात ही में मेढक अपने परिवार सहित दूसरे तालाब को चला गया। दूसरे दिन सबेरे मछुवे उस तालाब पर पहुँचे। सम्पूर्ण तालाब में अनेक बड़े-बड़े जाल डाल दिये और वहाँ की सारी मछलियाँ, मेढक, केकड़े आदि सब पकड़ लिये। अन्य मछलियों के साथ ही सहस्र-बुद्धि और शतबुद्धि दोनों पकड़ गये, यद्यपि उन्होंने बचने की बड़ी कोशिशें कीं।

जब मछुवे वहाँ से मछली मार कर लौटे तो मेढक ने अपनी पत्नी को दूर से सहस्रबुद्धि और शतबुद्धि को पहचान कर दिखाया और कहा—

शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्रधीः।
एकबुद्धिरहं भद्रे क्रीडामि विमले जले॥

अर्थात्—हे प्रिये देखो, यह शतबुद्धि पकड़कर सिर पर रखा गया है तथा सहस्रबुद्धि बाँधकर लटकाया गया है। मैं एकबुद्धि इस विमल जल में क्रीड़ा करता हूँ।

अड़तीसवीं कथा

जुलाहे की कथा

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः ।
स एव निधनं याति यथा मन्थरकौलिकः ॥

अर्थात्—जिसे स्वयं बुद्धि नहीं है तथा जो मित्र की भी बात नहीं मानता वह मन्थर जुलाहे की भाँति मृत्यु को प्राप्त होता है।

मन्थर नामक एक जुलाहा श्रावस्ती में रहता था। एक दिन उसके करघे के कुछ यंत्र टूट गये। वह एक कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काटने के लिए गया और समुद्र के किनारे एक शीशम का पेड़ देखकर उसने सोचा कि इस पेड़ को काट लेना चाहिए, क्योंकि इसकी लकड़ी मेरे कार्य के लिए पर्याप्त और उपयुक्त होगी। यह सोचकर जैसे ही उसने उसे काटने के लिये अपनी कुल्हाड़ी उठाई कि उस पेड़ से एक परी उतरी और उसने जुलाहे से कहा—ठहरो भाई ! इस पेड़ पर मेरा निवास है, कृपया इसे मत काटो। यहाँ मैं सुख से रहती हूँ और समुद्र के किनारे की स्वास्थ्यप्रद ठंढी हवाएँ मेरे स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाती हैं।

जुलाहे ने कहा—पर मैं क्या करूँ देवी ! मेरी तो जीविका का प्रश्न है क्योंकि जब तक मैं दूसरी लकड़ी से अपने करघे की मरम्मत नहीं करूँगा मैं अपना कार्य कैसे करूँगा। विना कार्य किये फिर भला मैं अपना और अपने कुटुम्बवालों का पेट कैसे भरूँगा। इसलिए आप ही कृपया किसी दूसरे पेड़ पर चली जाइये ताकि मैं जल्दी से अपना काम पूर्ण कर लूँ।

परी ने कहा—मित्र ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम जो चाहो मुझसे माँग सकते हो। मैं तुम्हें दूँगी, पर तुम इस पेड़ को मत काटो।

जुलाहे ने कहा—यदि ऐसी बात है तो कृपया मुझे घरवालों से राय ले लेने दीजिए कि मैं आपसे क्या माँगूँ।

परी इस बात पर सहमत हो गई और जुलाहा अपने घर की ओर चल दिया। मार्ग ही में उसकी भेंट अपने एक मित्र नाई से हो गई। उसने उससे कहा—मित्र! मुझ पर एक परी प्रसन्न हो गई है। वह मुझे, जो कुछ भी मैं उससे माँगूँ देने के लिये तैयार है। अब तुम बताओ कि मैं उससे क्या माँगूँ।

नाई ने कहा—मित्र! यदि ऐसा है तो तुम उससे कहो कि वह तुम्हें एक राज्य दे। फिर तुम उसके राजा बनना और मुझे अपना मंत्री बना लेना। बस, हम और तुम चैन से जीवन वितायेंगे और इस संसार के समस्त सुखों का भोग करेंगे।

जुलाहा बोला—तुम बिलकुल ठीक कहते हो पर तनिक मैं अपनी पत्नी की राय भी ले लूँ।

नाई ने कहा—अरे! अरे! कहीं ऐसी मूर्खता भी न करना। किसी काम के करने में स्त्रियों की राय लेना महान् मूर्खता है क्योंकि पुरुषों का कहना है वे स्वार्थिनी होती हैं। उन्हें अन्न-वस्त्र से सन्तुष्ट रखना चाहिए। अन्य कार्य में उनसे परामर्श नहीं लेना चाहिए।

जुलाहे ने कहा—तुम्हारी बात ठीक हो सकती है, पर मेरी स्त्री बहुत ही सुशील है। इसलिये मैं उसकी राय अवश्य लूँगा।

वह जल्दी से अपनी पत्नी के पास पहुँचा और उसे परी की सम्पूर्ण कथा सुनाई तथा अपने नाई मित्र की सलाह भी बता दी फिर उससे पूछा कि तुम बताओ मुझे उससे क्या माँगना चाहिए।

वह बोली—स्वामी! आपके मित्र की बातें बिलकुल निस्सार हैं क्योंकि नाई मूर्ख होते हैं। फिर सोचो यह राज्य-संचालन भी एक झंझट है। राज्य करने का मतलब बैठे बिठाये बेकार की एक बला अपने सिर मोल लेना है। आये दिन युद्धों की तैयारी, कूटनीति, इसको मारना, उसको दण्ड देना, अनेक कठिनाइयाँ सामने मौजूद रहती हैं और फिर—

यदैव राज्ये क्रियतेऽभिषेकस्तदैव याति व्यसनेषु बुद्धिः।
घटानृपाणामभिषेककाले सहाम्भसैवापदमुद्गिरन्ति॥

अर्थात्—जिस समय राज्याभिषेक होता है उसी समय बुद्धि दुर्व्यसनों में फँस जाती है। घड़े राजाओं के अभिषेक के समय में जल के साथ ही आपत्तियों को भी गिराते हैं।

जुलाहे ने कहा—तुम ठीक कहती हो। पर यह तो बताओ कि मैं उससे फिर माँगूँ क्या?

वह बोली—देखो तुम एक थान कपड़ा नित्य बुनते हो, जिससे हमारे घर का सारा

व्यय चलता है। अब तुम परी से एक सिर और दो हाथ और माँग लो जिससे कि तुम एक ही समय में आगे और पीछे दोनों ओर से कपड़ा बुन सको। उस दूसरे स्थान से हम लोगों के सुख का सामान आ जाया करेगा।

पत्नी की राय सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—क्या बढ़िया राय दी तुमने। बस मैं यही उससे माँगूँगा।

जुलाहे ने जाकर परी से यही वरदान माँगा कि देवी! मुझे कृपया एक सिर और दो हाथ और दे दीजिए।



तथास्तु—परी ने कहा और उसके तुरन्त दो हाथ और एक दूसरा सिर पैदा हो गया।

वह प्रसन्न होकर अपने घर को चल दिया। मार्ग में लोगों ने चार हाथ और दो सिर का आदमी देखकर इसे राक्षस समझा और सबने मिलकर इसे खूब मारा जिससे कि वहीं इसके प्राण निकल गये।

उनतालीसवीं कथा

बन्दर का बदला

चन्द्र नामक एक राजा ने अपने राजकुमार का चित्त बहलाने के लिये बहुत से बन्दर पाल रक्खे थे। उन बन्दरों को बड़ी अच्छी तरह से रक्खा जाता और उनके सुख-दुख का पूर्ण ध्यान रक्खा जाता था।

उसी राजकुमार के मन बहलाने के लिये बहुत सी भेड़ें भी पली हुई थीं। एक भेड़ नित्य ही राजा के रसोईघर में घुस जाती थी और भोजन में मुँह डाल दिया करती थी। रसोइए उसे मारकर भगा दिया करते थे। पर फिर भी वह रोज वहाँ पहुँच ही जाती थी।

एक वयस्क बन्दर ने यह बात देखकर सोचा—यह रसोइए और भेड़ की लड़ाई तो अच्छी नहीं। इससे तो सारे बन्दरों की जान का भय है। क्योंकि भेड़ अपना स्वभाव नहीं छोड़ेगी और क्रोध में किसी दिन रसोइया उसको जलती लकड़ी भी मार सकता है। इससे भेड़ के ऊन में आग लग जायगी और वह भेड़ वहाँ से भागकर सामने के घास-गोदाम में जा घुसेगी जिससे घास में आग लग जायगी और आग की लपटों से राजा के घुड़साल के घोड़े जल जायँगे। जब वे पशुचिकित्सक को दिखाये जावेंगे तो वह तुरन्त ही बन्दरों की चर्बी का लेप बतावेगा और मेरे सारे जाति भाई मार डाले जावेंगे। यह सब सोचकर उसने सब बन्दरों को इकट्ठा करके यह बात समझाई और उनसे तुरन्त वह स्थान छोड़कर चल देने को कहा। पर वे मूर्ख वहाँ के सुखों को छोड़कर जाने के लिये तैयार न हुए और उस बन्दर की बात को हँसी में उड़ा दिया। उसने बहुत कहा—मूर्खता मत करो। इन क्षणिक सुखों के लिए तुम लोग अपना इतना बहुमूल्य जीवन संकट में मत डालो। अभी यह सब भला मालूम होता है पर बाद में पछताओगे। पर वे मूर्ख टस से मस न हुए। इस पर उसने कहा—भाई! अपने भाइयों की मौत मैं किसी भी हालत में देखने को तैयार नहीं इसलिये मैं तो जाता हूँ। क्योंकि वे लोग धन्य हैं जो मित्रों की विपत्ति, कुलक्षय तथा देश का नाश नहीं देखते।

बन्दर के चले जाने के कुछ ही दिनों बाद वही भेड़ एक दिन अपने स्वभाव के अनुसार

रसोईघर में घुस गई और पकवान के थाल में मुँह डाल दिया। उसे देखकर रसोइया बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसके सामने चूल्हे में जलती हुई लकड़ी ही उस समय पड़ी। बस उसी से उसने तुरन्त उस भेड़ को मारना आरम्भ कर दिया। लकड़ी की आग तुरन्त ऊन में लग गई और घबरा कर वह भेड़ सीधे घासगोदाम में घुस गई। वहाँ तमाम फूस इकट्ठा था। कुछ ही क्षणों में उस फूस में आग लग गई और उसने तुरन्त ही महा उग्र रूप धारण कर लिया। घास के गोदाम से बढ़कर आग ने अस्तबल को चारों ओर से घेर लिया। उसके अन्दर राजा के अनेक घोड़े बँधे थे। वे सबके सब बुरी तरह जल गये। राजा तुरन्त वहाँ आया। आग बुझाई गई और पशुचिकित्सक को बुलाया गया। उसने शीघ्र ही बन्दरों की चर्बी उनके घावों पर मलने की राय दी।

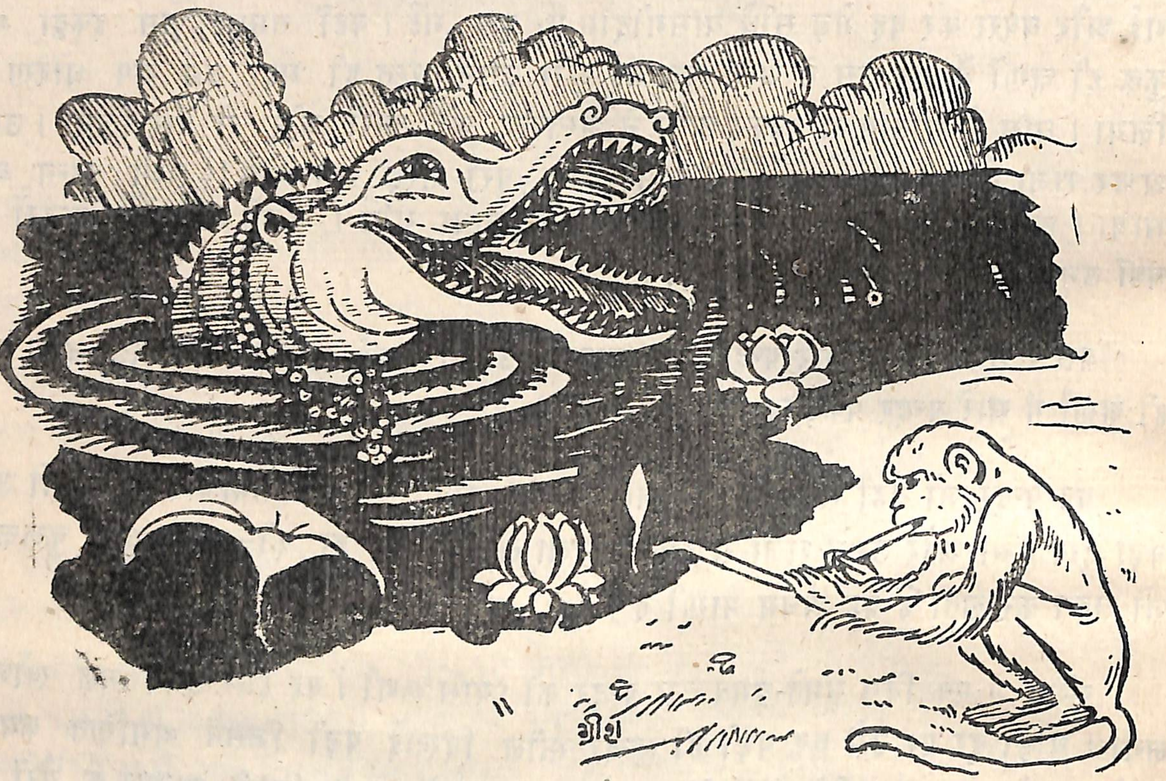
बस राजा ने तुरन्त सारे बन्दरों को मारकर उनकी चर्बी लगाने की आज्ञा दी। कुछ ही क्षणों में सारे बन्दर पकड़कर मार डाले गये।

वह बन्दर जो यहाँ से पहले ही चला गया था, जब उसने यह समाचार सुना तो उसे बड़ा दुख हुआ और उसने राजा से इसका बदला लेने की प्रतिज्ञा की—शत्रु द्वारा कुलक्षय जो सहन कर लेता है वह अधम प्राणी है।

जंगल में एक दिन घूमते-घूमते उस बन्दर को प्यास लगी। वह इधर-उधर जल खोजने लगा। थोड़ी दूर पर उसे एक बड़ी ही सुन्दर झील दिखाई पड़ी जिसमें अगणित कमल खिले हुए थे। वह जल पीने के लिये उधर चला। मार्ग में उसने किसी जानवर के पैरों के निशान देखे जो उस झील की ओर जाने से बन गये थे। जाने के निशान तो उसे दिखाई पड़े पर उसके अन्दर से आने का कोई चिह्न उसे न दिखाई दिया। यह देखकर उसने सोचा अवश्य ही इस झील में कोई भयंकर जलचर छिपा बैठा है। इसलिए उसके निकट जाकर पानी पीने में हानि की आशंका है। यह सोचकर उसने एक बाहर पड़ी कमलनाल उठाकर दूर से पानी में डाल दी और उसे मुँह में लगाकर पानी पीने लगा।

जब वह पानी पी चुका तो झील के अन्दर से एक भयंकर जलचर निकला जिसके कण्ठ में एक बहुमूल्य जवाहरातों का हार पड़ा हुआ था। उसने बन्दर से कहा—मित्र, जो भी इस जल के अन्दर घुसता है मैं उसे खा जाता हूँ। पर आज तक तुम्हारे जैसा कोई बुद्धिमान् नहीं आया जो इतनी सतर्कता से पानी पिये। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिये तुम्हारी जो भी इच्छा हो मुझसे कहो, मैं पूरी करूँगा।

बन्दर ने पूछा—आप एक समय में कितने को खा सकते हैं। उसने कहा—सैकड़ों, हजारों, लाखों जितने भी इस पानी में घुसें, मुझसे बच नहीं सकते पर इसके बाहर एक तुच्छ सियार भी मुझे आसानी से परास्त कर सकता है।



बन्दर ने कहा—मित्र! मैंने एक राजा से बदला लेने की प्रतिज्ञा की है। यदि तुम मुझे अपना यह कण्ठहार दे दो तो इसे दिखाकर मैं उसके लालच को बढ़ा दूँगा और फिर उसे इस झील में उसके सम्बन्धियों और अनुचरों के सहित भेज दूँगा। फिर तुम ठाट से उनका भोजन करना—बोलो हो तैयार?

जलचर ने कहा—इससे बढ़कर क्या बात हो सकती है। उसने अपना वह कण्ठहार बन्दर को दे दिया। उसे लेकर बन्दर नगर में जा पहुँचा और अपनी गर्दन में बाँधकर लोगों को दिखाता हुआ इधर-उधर घूमने लगा।

लोगों ने उसके पास हार देखकर पूछा—कहो वानर-राज! यह हार तुम्हें कहाँ प्राप्त हुआ?

बन्दर ने कहा—एक जंगल में एक झील है वहाँ साक्षात् कुबेर का कोष है। जो

रविवार को प्रातः उस झील में स्नान करके जल के बाहर निकलता है उसके गले आप ही आप एक ऐसा हार आ जाता है।



यह समाचार तुरन्त ही सारे नगर में फैल गया। राजा ने भी सुना। उसने तुरन्त ही बन्दर को बुलवाया और इस बात की सत्यता पूछी। बन्दर ने कहा— महाराज! आपके सामने

इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे कण्ठ में उपस्थित है और यदि आप इसका और भी प्रमाण चाहते हैं तो किसी को मेरे साथ भेज दीजिए।

राजा ने तुरन्त कहा—मैं स्वयं तुम्हारे साथ चलकर इस बात की परीक्षा लूँगा।

तृष्णे देवि ! नमस्तुभ्यं यया वित्तान्विता अपि।
अकृत्येषु नियोज्यन्ते भ्राम्यन्ते दुर्गमेष्वपि॥

अर्थात्—हे तृष्णादेवी, तुम्हें नमस्कार है क्योंकि तुम्हारे वश में आकर धनवान् पुरुष भी बुरे कर्मों में फँसकर दुर्गम स्थानों में भटकते हैं।

बन्दर ने कहा—बड़ी प्रसन्नता से। ठीक प्रातःकाल बन्दर के साथ राजा तथा उसके सम्बन्धी और अनुचर उस झील के किनारे पहुँच गये। बन्दर ने कहा—महाराज ! कण्ठहार उसी को मिलता है जो ठीक सूर्योदय के समय पानी में घुसता है इसलिये आप सब आदमियों से कह दीजिए कि सबके सब एकदम से जल में घुस पड़ें और आप मेरे साथ आइए। मैं आपको ठीक उस स्थान पर ले चलूँगा जहाँ से मैं घुसा था। यहाँ मैं आपको दूर से अगणित कण्ठहार, जो वहाँ रक्खे हैं, दिखा दूँगा। राजा की आज्ञा से उसके सभी आदमी एक साथ जल में घुस गये जिन्हें वह जलचर खा गया।

अधिक देर हो गई और राजा के आदमी जब जल के बाहर न निकले तो उसने बन्दर से पूछा कि मेरे आदमी बाहर क्यों नहीं निकलते ? बन्दर तुरन्त एक पेड़ पर चढ़ गया और राजा से बोला—ओ नीच राजा, तुम्हारे आदमियों को जलचर ने खा लिया जो इसके अन्दर रहता है। तुमने मेरे कुटुम्बियों को एक बार मौत के घाट उतरवा कर मेरा नाश कर दिया था। यह उसी का बदला है। मैंने तुम्हें केवल इसलिए जल में नहीं घुसने दिया कि मुझे ध्यान आ गया कि तुम राजा हो।

यो लौल्यात् कुरुते कर्म नैवोदर्कमवेक्षते।
विडम्बनामवाप्नोति स यथा चन्द्रभूपतिः॥

अर्थात्—जो चञ्चलता वश कार्य करता है पर परिणाम नहीं सोचता वह दुर्दशा को प्राप्त होता है जैसे राजा चन्द्र।

———

चालीसवीं कथा

मूर्ख राक्षस और मूर्ख बन्दर

महाराज चित्रसेन नामक एक अत्यन्त ही बली राजा कोटवा नगरी में राज्य करता था। मोतिका नामक उसके एक अत्यन्त ही सुन्दर राजकुमारी थी, जिसमें सौन्दर्य के बत्तीसों लक्षण वर्त्तमान थे।



एक राक्षस उस राजकुमारी के सौन्दर्य पर मुग्ध था। नित्य ही वह राजकुमारी को उठा ले जाने के लिए आता था और उसे सताया करता था पर वह राजकुमारी को उठा कभी न पाता था क्योंकि राजकुमारी अपने चारों ओर मंत्रशक्ति से एक रक्षा-परिधि बाँध लिया करती। फिर भी जब कभी वह उसके निकट आता तो राजकुमारी को अपने चारों ओर एक विचित्र गर्मी मालूम होती थी तथा उसके शरीर में कँपकँपी दौड़ जाती थी।

एक दिन संध्या समय राक्षस ने महल में जाकर अपने को राजकुमारी के सामने प्रकट कर दिया। उसे देखकर राजकुमारी ने अपनी सखी से कहा—सखी! देखो यह राक्षस

नित्य ही धुँधलके (अर्थात् संध्या का झुटपुटा होते ही) के साथ आता है। क्या कोई ऐसा उपाय है जो मुझे इससे छुटकारा मिल जाय ?

राजकुमारी की बात सुनकर राक्षस ने सोचा—अच्छा अकेला मैं ही नहीं हूँ जो इस राजकुमारी के पास आता हूँ। एक दूसरा राक्षस भी आता है जिसका नाम धुँधलका है। लेकिन मेरी ही तरह वह भी इसे ले नहीं जा पाता है। अच्छा देखना चाहिए कि वह है कैसा ? यह सोचकर उसने अपने को घोड़े के रूप में बदल लिया और अस्तबल में ठहर गया।

ठीक मध्यरात्रि को महल के उसी अस्तबल में एक घोड़े का चोर आया और उसने सब घोड़ों में से देखकर उज्ज्वल घोड़े को (जो स्वयं राक्षस था) छाँटा और उसके मुँह में लगाम पहना दी। चोर को देखकर राक्षस ने सोचा कि अवश्य ही यही वह धुँधलका है और मुझे इसने पहिचान लिया है इसीलिए यह मुझे मार डालने की धुन में है। अब मैं इससे बचने का उपाय करूँ।

उधर जब राक्षस इस प्रकार से सोच रहा था, चोर उस पर बैठ गया और उसको चाबुक मारा। राक्षस डरकर दौड़ने लगा। और दौड़ते-दौड़ते महल से काफी दूर बाहर निकल गया। रास्ते में चोर उसे रोकने के लिए जितनी ही लगाम जोर से खींचता था, राक्षस उतनी ही तीव्र गति से भागता था। यह देखकर चोर ने सोचा कि अगर यह साधारण घोड़ा होता तो लगाम खींचते ही रुक जाता परन्तु यह तो कष्ट की तनिक भी परवाह किये बिना ही भागता चला जा रहा है। थोड़ा और चलने पर चोर सारी कोशिशें कर चुका और घोड़ा न रुका तब उसे भय लगा और उसे निश्चय हो गया कि अवश्य ही घोड़े के रूप में कोई राक्षस है। यह सोचकर वह चोर ऐसी जगह ढूँढ़ने लगा जहाँ मोटी घास उगी हो ताकि वह वहाँ उसकी पीठ पर से फाँद जाये और अपनी जान की रक्षा करे। जब वह चोर यह विचार कर ही रहा था कि वह घोड़ारूपी राक्षस एक बटवृक्ष के नीचे से निकला। चोर ने झट से पेड़ की डाल पकड़ ली और उससे लटक गया। चोर के पीठ पर से उतर जाने से राक्षस को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने सोचा चलो जान बची। ठीक यही चोर ने भी सोचा कि चलो मेरी जान बची।

उसी बटवृक्ष पर उस राक्षस का मित्र एक बन्दर रहता था। उसने जब राक्षस को भागते देखा तो उससे कहा—अरे भाई तुम व्यर्थ ही में इस आदमी से डरकर भाग रहे हो। यह तो तुम्हारा भोजन है—मनुष्य है। आओ और इसका भोग लगाओ।

यह सुनते ही राक्षस ने अपना असली रूप बदल लिया और इस ओर मुड़ा किन्तु उसके मन में अब भी आशंका बनी हुई थी और वह हिचक रहा था। इधर चोर को बन्दर की इस कुचाल पर बड़ा क्रोध आया। बन्दर की पूँछ ठीक उसी जगह लटक रही थी जहाँ चोर लटका हुआ था। मारे क्रोध के चोर ने उसकी पूँछ मुँह से दाबली और निर्दयता-



पूर्वक उसे चबाने लगा। तब तो बन्दर ने यह समझा कि यह कोई मनुष्य नहीं बल्कि कोई महा बलशाली राक्षस है। यह सोचकर बन्दर सहम गया। और उसकी घिग्घी बँध गई तथा उसने भय से अपनी आँखें कसकर बन्द कर लीं। उसकी यह हालत देखकर राक्षस ने कहा—

यादृशी वदनच्छाया दृश्यते तव वानर।
विकालेन गृहीतोऽसि यः परैति स जीवति॥

अर्थात्—हे वानर! तुम्हारे मुख की छाया जैसा दिखाई पड़ती है उससे यह प्रतीत होता है कि तुम्हें किसी राक्षस ने पकड़ लिया है। अतः जो भागेगा वही जीवित बचेगा।

यह कह कर राक्षस वहाँ से भाग गया तथा चोर भी वहाँ से उतर कर अपने घर चला गया।

———

इकतालीसवीं कथा

त्रयोस्तना राजकुमारी

अन्धककुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका।
त्रयोऽपन्यायतः सिद्धाः सम्मुखे कर्मणि स्थिते॥

अर्थात्—अन्धा, कुबड़ा तथा त्रिस्तनी राजकुमारी तीनों जो अनमेल इकट्ठे थे भाग्यवश ठीक हो गये।

मथुरा के राजा मधुसेन के यहाँ एक बार एक कन्या का जन्म हुआ जिसके तीन स्तन थे। महाराज को जब इस बात की सूचना मिली तो उन्होंने कन्या को अशुभ समझकर उसे



तुरन्त किसी जंगल में फिकवा देने की आज्ञा दे दी। पर उनके मंत्रों ने महाराज को समझाकर कहा—महाराज! यह तो मैंने भी सुना है कि तीन स्तन की कन्या वंश के लिये

अशुभ होती है और अपने पिता के लिये घातक सिद्ध होती है, पर उसे जंगल में फिकवाने से पहले कम से कम आप कुछ विद्वान् ब्राह्मणों और ज्योतिषियों से भी परामर्श कर लीजिए और तब फिर जो इच्छा हो सो कीजिए, क्योंकि फिर समाज आपकी इस निष्ठुरता के लिए दोषी नहीं ठहरा सकता और न विद्वानों से इसके बारे में पूछने से आपकी कोई हानि ही होगी। कभी-कभी प्रश्न कर लेना बड़ा लाभकर भी सिद्ध होता है।

पृच्छकेन सदा भाव्यं पुरुषेण विजानता।
राक्षसेन्द्रगृहीतोऽपि प्रश्नान्मुक्तो द्विजः पुरा ॥

अर्थात्—विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह पूछकर काम करे। राक्षस के द्वारा पकड़े जाने पर भी ब्राह्मण प्रश्न करने (पूछने) से ही मुक्त हुआ।

राजा ने पूछा—वह कैसे ?

उसने कहा—महाराज ! एक जंगल में चन्दकर्म नामक एक अत्यन्त ही भयंकर राक्षस रहता था। एक बार जब वह जंगल में विचर रहा था, उसके निकट से एक ब्राह्मण निकला। वह राक्षस तुरन्त ही ब्राह्मण के कन्धों पर उचक कर बैठ गया और डाँट कर आज्ञा दी चलो। ब्राह्मण इस आकस्मिक घटना से घबड़ा गया और चलने लगा। चलते-चलते ब्राह्मण के हाथ राक्षस के पैरों से छू गये। उसने देखा कि उसके पैर कमल की तरह अत्यन्त ही कोमल हैं। ब्राह्मण ने राक्षस से इसका कारण पूछा। राक्षस ने कहा—मैंने यह व्रत ले रक्खा है कि मैं पृथ्वी पर गीले पैर कभी न रक्खूँगा इसलिए मेरे पैर अत्यन्त ही कोमल हैं। ब्राह्मण को इस झंझट से बचने की युक्ति तुरन्त ही सूझ गई। रास्ते में एक झील पड़ी। राक्षस ने ब्राह्मण से कहा—देखो, मैं स्नान, पूजा के लिये जा रहा हूँ और जब तक लौट न आऊँ यहाँ से आगे मत बढ़ना। यह कहकर राक्षस झील में उतर गया। ब्राह्मण ने सोचा—अब तो यह बाहर आकर अवश्य ही मुझे खा जायगा। इसलिए मुझे तुरन्त भाग चलना चाहिए। यह अपने व्रत के अनुसार गीले पैर पृथ्वी पर रक्खेगा नहीं इसलिये यह मेरा पीछा भी न कर सकेगा। ऐसा सोचकर ब्राह्मण वहाँ से भाग गया, और उसे भागते देखकर राक्षस अपने व्रत के कारण उसका पीछा भी न कर सका।

इस कथा को सुनकर राजा ने विद्वान् ज्योतिषी बुलाये और उन्हें अद्भुत कन्या के जन्म की बात सुनाई तथा उनसे पूछा कि क्या करना चाहिए। विद्वानों ने कहा—महाराज ! अमानुषिक रूप वाली सन्तान का मुख देखना भी धर्मशास्त्रों में अशुभ कहा गया

है इसलिये आप भूलकर भी उसे न देखें और उस कन्या को किसी के साथ ब्याह दीजिए तथा ब्याहने वाले को पर्याप्त धन दे दीजिए। कोई न कोई लोभी धन के लालचवश उसे अवश्य ब्याह लेगा और इस प्रकार आप कन्या को निकालने के दोष से भी मुक्त हो जावेंगे तथा आपका काम भी हो जायगा।

राजा को यह राय बहुत पसन्द आई और उन्होंने अपने राज्य में घोषणा करवा दी कि जो भी इस त्रिस्तनी राजकुमारी से विवाह करेगा उसे एक लाख मोहरें पुरस्कार में दी जावेंगी परन्तु उसे राजकुमारी के साथ ही यह नगर छोड़ देना पड़ेगा।

उस नगर में एक अन्धा और एक कुवड़ा मित्र रहते थे जो भिक्षा माँगकर जीवन निर्वाह करते थे। कुवड़ा अन्धे को टिका कर यहाँ वहाँ भीख माँगने को ले जाया करता और भीख में जो कुछ अन्धे को मिल जाता वह दोनों आपस में बाँट लेते। उन दोनों ने भी राजा की यह घोषणा सुनी। अन्धे ने कुवड़े से कहा—मित्र! चलो। मैं उस राजकुमारी को स्वीकार कर लूँ। चूँकि मैं अन्धा हूँ इसलिये मैं कभी उसका मुख देखूँगा नहीं और इससे मुझे कोई कष्ट भी न होगा और इसके बदले मुझे पर्याप्त धन तो मिलेगा, जिसमें हम तुम आनन्द से जीवन बितायेंगे। यदि अभाग्यवश उस राजकुमारी से विवाह करने के कारण हम लोग मर भी गये तो भी कम से कम इस नारकीय जीवन और कष्टों से छुटकारा भी मिल जायगा। इस कार्य के दोनों पक्षों में हमें लाभ ही लाभ है। इसलिये चलो यह कार्य कर डाला जाय। कुवड़ा भी इस बात पर सहमत हो गया और वह अन्धे को सहारा देकर महल में ले गया। वहाँ जाकर अन्धे ने महाराज से कह दिया कि मैं राजकुमारी को ब्याहने के लिए तैयार हूँ।

राजा ने तुरन्त अपने आदमियों को आज्ञा दी कि जाओ यमुना किनारे राजकुमारी की शादी इस अन्धे के साथ कर दो और इसे एक लाख मोहरें कोष से दिलवाकर वहीं एक नौका पर बैठाकर इस नगर से विदा कर दो।

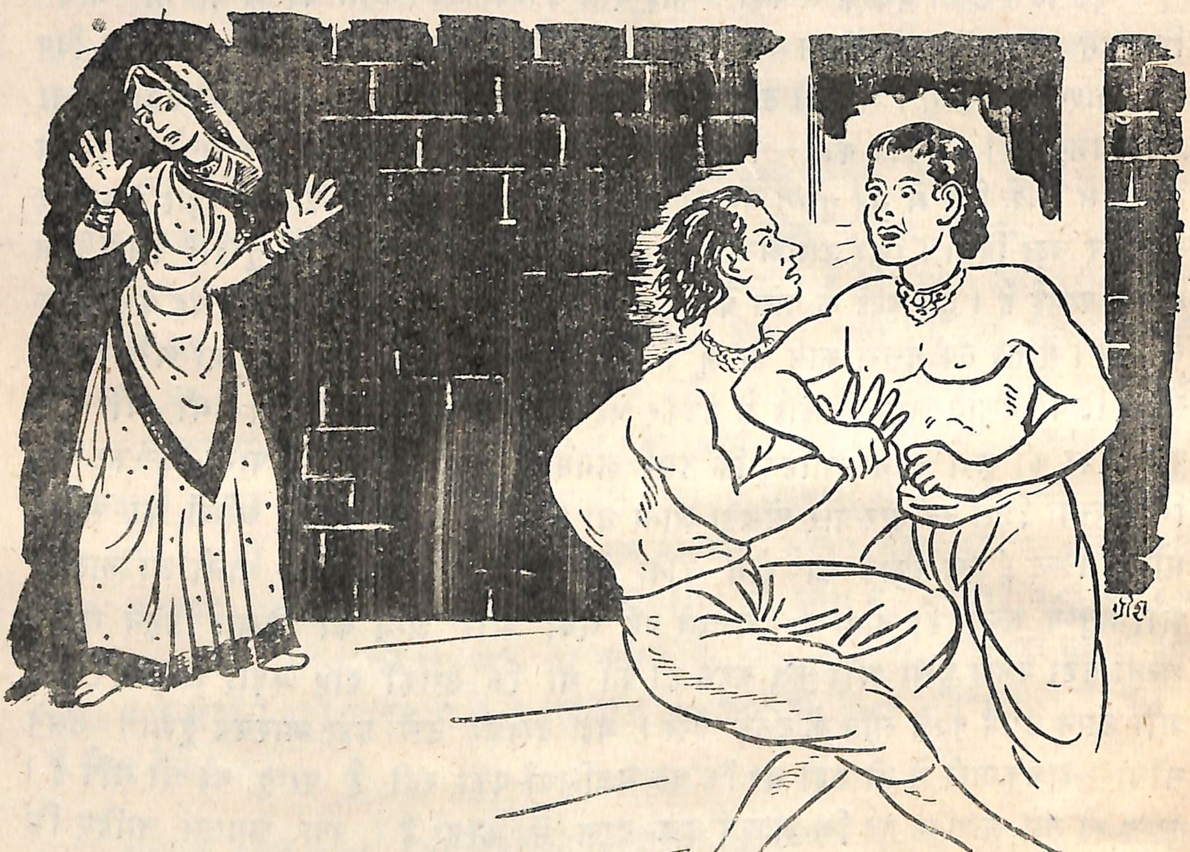
राजकर्मचारियों ने राजकुमारी को यमुना किनारे जाकर अन्धे को समर्पित कर दिया और उसे एक लाख मोहरें दे दीं। इसके बाद राजाज्ञानुसार राजकुमारी तथा अपने मित्र कुवड़े को साथ लेकर अन्धे ने उसी समय नाव द्वारा उस नगर को छोड़ दिया और एक दूसरे नगर में जाकर एक घर लेकर रहने लगा। अन्धा तो घर में केवल पड़ा रहता था और कुवड़ा मंथरक घर के सब कार्य करता था।

इस घटना को हुए कई वर्ष बीत गये। राजकुमारी बढ़कर पूर्ण युवावस्था को पहुँच गई। घर में केवल तीन प्राणी थे, जिनमें अन्धा बेचारा बिलकुल बेकार था। इसलिये राजकुमारी अधिकतर कुबड़े के साथ बातचीत कर अपना समय बिताती थी। धीरे-धीरे उसको कुबड़े से प्रेम हो गया पर अन्धा उसका पति था इसलिए वह विवश हो जाती थी।

एक दिन उसने मंथरक से कहा—कोई ऐसा उपाय करो जिससे यह अन्धा मर जाय। फिर हम तुम आनन्द से जीवन व्यतीत करें। मंथरक सहमत हो गया और इधर-उधर विष की तलाश करने लगा। रास्ते में उसे एक मरा काला साँप मिल गया। वह उसे उठा लाया और राजकुमारी को देकर कहा—प्रिये! इसे काटकर इसकी तरकारी बनाकर अन्धे को खिला दो। बस इसके विष से यह तुरन्त मर जावेगा। राजकुमारी ने साँप को काटकर कढ़ाई में रखकर चूल्हे पर चढ़ा दिया। फिर उस अन्धे से जाकर कहा—प्रिय, देखो मैंने तुम्हारे लिये आज मछली पकाई है। तुम चूल्हे के पास बैठकर उसे कलछी से चला देना ताकि वह कहीं जल न जाय। मैं तब तक दूसरा काम कर लूँ। अन्धा आकर कढ़ाई के पास बैठ गया और कलछी से मछलियाँ चलाने लगा। कढ़ाई से उठकर जहरीली भाप उसकी आँखों में लगी और इसे कुछ ईश्वर की कृपा कहना चाहिए कि उसके लगने से उसकी आँखों से पानी टप-टप कर गिरने लगा जिसे वह बार-बार पोंछता जाता था। थोड़ी देर में उसकी आँखों का समस्त मोतियाबिन्द (एक प्रकार का रोग होता है—जिसमें कि आँखों में पानी आ जाता है और मनुष्य अन्धा हो जाता है) गलकर बह गया और अन्धे को दिखाई पड़ने लगा। अन्धा बड़ा प्रसन्न हुआ और कुछ कहने ही को था कि उसकी दृष्टि कढ़ाई के अन्दर पड़ी और उसने उसमें काले साँप के टुकड़े देखे। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—राजकुमारी ने तो कहा था कि वह मछलियाँ पका रही है परन्तु यह तो साँप है। तुरन्त ही उसे आशंका हुई कि अवश्य कुछ दाल में काला है। पता लगाना चाहिए कि बात क्या है। मालूम होता है राजकुमारी मंथरक से प्रेम करती है और इसीलिये साँप खिलाकर यह मुझे मार डालना चाहती है। यह सोचकर वह चुप रहा और अन्धा ही बना रहा।

थोड़ी देर बाद मंथरक बाहर से लौटकर आ गया और राजकुमारी भी अपना काम समाप्त कर चुकी। दोनों कमरे के अन्दर चले गये। अन्धा भी झूठमूठ टटोलते-टटोलते कमरे में चला गया। उसने देखा कि मंथरक राजकुमारी को अपनी भुजाओं में लपेटे उसे प्यार कर रहा है। उन लोगों ने अन्धे को आते देखकर भी उसे अन्धा समझकर उसकी कुछ चिन्ता न की। यह देखकर अन्धे को बड़ा क्रोध आया और उसने तुरन्त ही मंथरक की गर्दन पकड़ ली और झटके से उसे राजकुमारी के पास से खींच लाया। मंथरक और

राजकुमारी दोनों ही इस आकस्मिक घटना से घबड़ा तो गये ही थे। इस कारण भयभीत राजकुमारी वहीं खड़ी रह गई। फिर अन्धे ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर मंथरक को ढकेल दिया। मंथरक लड़खड़ा कर राजकुमारी की तरफ गिरा और उसका सिर बड़ी जोर से राजकुमारी की छाती में, जहाँ उसका तीसरा स्तन था, टकराया। इस चोट से कुमारी का तीसरा स्तन उसके सीने में बैठ गया और वह स्थान ठीक हो गया तथा राजकुमारी का



शारीरिक दोष दूर हो गया तथा पीठ में गहरा झटका लगने के कारण मंथरक की पीठ का कूबड़ भी सीधा हो गया और उसका भी शारीरिक दोष दूर हो गया।

भाग्य का खेल देखिए कि कुछ आकस्मिक घटनाएँ ऐसी घटीं कि असम्भव बात तनिक सी घटना के वशीभूत होकर संभव हो गई। किसी ने सच कहा है कि भाग्य बहुत बड़ी चीज है।

—:०:—

बयालीसवीं कथा

चार मूर्ख पण्डित

किसी स्थान में चार ब्राह्मण परस्पर मित्रतापूर्वक निवास करते थे। बचपन में उन्होंने सोचा--विदेश में जाकर विद्याध्ययन किया जाय। दूसरे दिन निश्चय करके वे सब विद्याध्ययन के लिए कन्नौज गये। वहाँ वे विद्यालय में पढ़ने लगे। बारह वर्ष के अनवरत अध्ययन से वे समस्त विद्या में पारङ्गत हो गये। इसके पश्चात् उन्होंने आचार्य को गुरु-दक्षिणा देकर तथा पुस्तकों को लेकर घर को प्रस्थान किया। मार्ग में कुछ दूर चलकर उन्हें दो रास्ते मिले। वे सोचने लगे—किस मार्ग से चलें। उसी समय समीप के नगर में किसी बनिया का लड़का मर गया था। उसकी दाहक्रिया के लिए महाजन श्मशान को जा रहे थे। तब उन चारों में से एक ने पुस्तक देखकर कहा—"महाजनो येन गतः स पंथा" महाजनों के मार्ग से चलना चाहिए। वे शास्त्र-सम्मत समझ कर महाजनों के पीछे-पीछे श्मशान पर पहुँचे। वहाँ उन्हें कोई गधा दिखाई पड़ा। तब दूसरे पंडित ने पुस्तक खोलकर देखा—

> उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे।
> राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः॥

अर्थात्--उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष, शत्रु द्वारा प्राप्त संकट, राजद्वार तथा श्मशान में जो रहता है (साथ देता है) वह बन्धु है।

अतः यह हमारा भाई है। यह समझकर कोई उसको गले से लगाने लगा। कोई उसके पैर धोने लगा। फिर जब उन्होंने सिर उठाकर इधर-उधर देखा तो कोई ऊँट दिखाई पड़ा। उन्होंने कहा--यह क्या है? तीसरे पण्डित ने पुस्तक खोलकर कहा—"धर्मस्य त्वरिता गतिः," धर्म की तीव्र गति है। अतः यह धर्म है। तब चौथे पण्डित ने पुस्तक देखकर कहा—"इष्टं धर्मेण योजयेत्" अर्थात् इष्ट बन्धु को धर्म में लगाना चाहिए। बस क्या था, सब पण्डितों ने मिलकर गधे को ऊँट के गले में बाँध दिया। ऊँट उस गधे को लेकर भाग

चला। बेचारा गधा छटपटाने तथा चिल्लाने लगा। किसी ने जाकर धोबी से कह दिया कि तुम्हारे गधे को पण्डितों ने ऊँट के गले में बाँध दिया है। यह सुनते ही धोबी डण्डा लेकर उन पण्डितों को मारने दौड़ा। वे लोग अपनी जान लेकर भाग खड़े हुए। रास्ते में एक नदी पड़ी। उसे पार करने का कोई उपाय न था। एक पलाश का पत्ता बहता आता दिखाई



दिया। एक पण्डित ने पुस्तक खोलकर देखा--"आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति।" (मार्कण्डेय पुराण) जो पत्ता बहता हुआ आता है वह हमें बचायेगा। यह कहकर वह उस पर कूद पड़ा और डूबने लगा। तब दूसरे पण्डित ने उसकी चोटी पकड़ कर कहा--

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।
अर्द्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसह ॥

अर्थात्--जब कोई वस्तु (धन) सम्पूर्ण नष्ट हो रही हो तो उसमें से आधा ही बचा लेना चाहिए।

बस क्या था ? पण्डितजी ने डूबते हुए पण्डितजी का सिर काट लिया। तदनन्तर शेष तीनों पण्डित भागते हुए किसी गाँव में पहुँचे। गाँववालों ने पृथक्-पृथक् घरों में उन्हें

भोजन के लिए निमन्त्रित किया। एक ने पण्डितजी को सूत्रिका (सेंवई) खाने को दी। पण्डितजी ने सोचा—दीर्घसूत्री विनश्यति। दीर्घसूत्री अर्थात् आलसी नष्ट हो जाता है। यह सोचकर वह भोजन त्याग कर चले गये। दूसरे पण्डितजी को खाने को खीर दी गई। उन्होंने कहा—अतिविस्तारविस्तीर्णं न तद्भवेत् चिरायुषम्। अर्थात् अत्यन्त विस्तृत वस्तु चिरायु नहीं होती। अतः वह भी भोजन त्यागकर चले गये। तीसरे पण्डितजी को बड़ा खाने को दिया गया। उन्होंने कहा—छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति अर्थात् छिद्रों में बहुत से अनर्थ होते हैं। अतः अनर्थ के भय से वह भी भोजन छोड़कर चल दिये। इस प्रकार वे तीनों पण्डित भूख-प्यास से व्याकुल होकर तथा लोगों से हँसी को प्राप्त होकर वहाँ से अपने देश को गये।

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः।
सर्वे ते हास्यतां यान्ति यथा ते मूर्खपण्डिताः॥

अर्थात्—शास्त्र में कुशल होते हुए भी लौकिक-ज्ञान-शून्य पुरुष हँसी को प्राप्त होते हैं जैसे कि मूर्ख पण्डित उपहास को प्राप्त हुए।

तैंतालीसवीं कथा

एक पेट दो मुख वाले पक्षी की कथा

किसी तालाब में भारण्ड नामक एक पक्षी निवास करता था। जिसके पेट तो एक ही था पर मुख दो थे। एक दिन वह समुद्र के किनारे भ्रमण कर रहा था। वहाँ समुद्र की तरङ्गों से किनारे पर फेंका गया अमृत-तुल्य कोई फल उसे प्राप्त हुआ। वह उसे खाने लगा। वह फल बड़ा ही स्वादिष्ट था। भारण्ड उसे खाते हुए प्रशंसा करने लगा—इस समुद्र की लहरों से फेंके गये बहुत ही मधुर फल मैंने खाये हैं, पर इस फल का स्वाद अपूर्व है। जान पड़ता है विधाता ने अप्रत्यक्ष रूप से पारिजात या हरिचन्दन वृक्ष के अमृत से भरे हुए फल को मेरे पास भेज दिया है। उसकी इन बातों को सुनकर दूसरे मुख ने कहा—अरे भाई, यदि यह फल इतना मीठा है तो, मुझे भी थोड़ा सा दो। जिससे मैं भी जिह्वा-सुख का अनुभव करूँ।

उक्त बातों को सुनकर प्रथम मुख ने हँसकर कहा—हम लोगों का पेट एक ही है और तृप्ति भी एक ही होती है अर्थात् एक के खाने से दूसरे का भी पेट भर जाता है। अतः पृथक् पृथक् भोजन करने से क्या लाभ? अच्छा तो यह है कि इस शेष फल से मैं अपनी स्त्री को संतुष्ट करूँ। ऐसा कहकर उसने शेष फल अपनी स्त्री भारण्डी को दे दिया। वह भारण्डी भी उस फल को खाकर बहुत प्रसन्न हुई तथा उस पक्षी से अधिक प्यार करने लगी। दूसरा मुख उसी दिन से उद्विग्न तथा दुःखी रहने लगा। एक दिन उसे एक विष-फल प्राप्त हुआ। उसे देखकर उसने प्रथम मुख से कहा—हे निर्दय, निष्ठुर तथा अधम! मुझे यह विष-फल मिला है। चूँकि तुमने मेरा अपमान किया है, अतः मैं इसको खाता हूँ।

प्रथम मुख ने कहा—अरे मूर्ख! ऐसा मत कर। अन्यथा हम दोनों नष्ट हो जायेंगे। वह इतना कह ही रहा था किन्तु दूसरे ने अपमान के दुख की अधिकता में उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और उस विष-फल को खा लिया। परिणाम निश्चित था। दोनों ही तुरन्त मर गये।

एकोदराः पृथग्ग्रीवा अन्योऽन्यफलभक्षिणः।
असंहता विनश्यन्ति भारण्डा इव पक्षिणः॥

अर्थात्—एक पेट किन्तु पृथक्-पृथक् मुँह वाले, वैमनस्य-वश अन्य-अन्य फल खाने वाले, भारण्ड पक्षी की भाँति नष्ट हो जाते हैं।

चवालीसवीं कथा

धर्मबुद्धि और पापबुद्धि की कहानी

किसी स्थान पर धर्मबुद्धि तथा पापबुद्धि नामक दो मित्र निवास करते थे। पापबुद्धि ने सोचा कि मैं मूर्ख हूँ तथा दरिद्रता से पीड़ित भी हूँ। अतः इस धर्मबुद्धि को साथ लेकर मैं विदेश में जाऊँगा। वहाँ इसी की सहायता से धनोपार्जन करूँगा तथा इसका धन भी ठगकर ले लूँगा। इस प्रकार मैं सुखी हो जाऊँगा। दूसरे दिन उसने धर्मबुद्धि से जाकर कहा--हे मित्र, बुढ़ापे में आप अपने किन कृत्यों को स्मरण करेंगे। यदि आप इस तरुणावस्था में देशाटन नहीं करेंगे तो बच्चों के साथ कौन सी बात करेंगे। क्योंकि—

देशान्तरेषु बहुविधभाषा वेशादि येन न ज्ञातम्।
भ्रमता धरणीपीठे तस्य फलं जन्मनो व्यर्थम्॥

अर्थात्—जिसने इस विश्व में देशाटन के द्वारा अनेक भाषा, वेश-भूषा आदि का ज्ञान नहीं प्राप्त किया, उसका जन्म निष्फल है।

पापबुद्धि की इन बातों को सुनकर धर्मबुद्धि बहुत प्रसन्न हुआ। वह दूसरे ही दिन बड़े लोगों की आज्ञा लेकर शुभ मुहूर्त्त में देशान्तर के लिए पापबुद्धि के साथ चल पड़ा। वहाँ धर्मबुद्धि के प्रभाव से पापबुद्धि ने बहुत अधिक धन प्राप्त किया। तदनन्तर वे दोनों प्रसन्नचित्त होकर पर्याप्त धन लेकर घर को लौटे। जब घर समीप आ गया, तब पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा—हे मित्र, यह सम्पूर्ण धन घर ले चलना उचित नहीं है, क्योंकि कुटुम्बी तथा भाई-बन्धु इसमें से भाग बँटायेंगे। अतः इसे इसी वन में कहीं गड्ढा खोदकर गाड़ दें तथा थोड़ा सा धन लेकर घर चलें। आवश्यकता पड़ने पर फिर यहाँ आकर उतना धन ले चलेंगे। क्योंकि—

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित् स्वल्पमप्यहो।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः॥

अर्थात्--बुद्धिमान् को चाहिए कि वह अपना थोड़ा सा भी धन किसी को भी न दिखावे, क्योंकि उसे देखकर मुनि का भी मन चञ्चल हो उठता है।

यह सुनकर धर्मबुद्धि ने कहा—मित्र, ऐसा ही करो। तत्पश्चात् वे दोनों धन को वहीं गड्ढे में गाड़कर घर चले गये तथा सुखपूर्वक रहने लगे। एक दिन पापबुद्धि ने अर्धरात्रि में जंगल में जाकर सारा धन निकाल लिया तथा गड्ढे को ज्यों का त्यों बन्द कर दिया। दूसरे दिन वह धर्मबुद्धि के पास जाकर बोला—मित्र! हमारा परिवार बड़ा है और धन के अभाव में हमें बड़ा कष्ट है। अतः चलो वहाँ से कुछ द्रव्य ले आयें। उसने कहा--ठीक है। ऐसा ही करो। वे दोनों जङ्गल में जाकर उस स्थान को खोदने लगे। जब उन्हें धन का बर्त्तन खाली दिखाई दिया तब पापबुद्धि सिर तथा छाती पीटते हुए बोला—हे धर्मबुद्धि! तुम्हीं ने यह धन चुराया है, किसी दूसरे ने नहीं। क्योंकि धन खोदकर पुनः गड्ढा भर दिया गया है। अतः मुझे उसमें से आधा धन दो। अन्यथा मैं तुम्हारे ऊपर अभियोग चलाऊँगा। धर्मबुद्धि बोला—अरे दुरात्मा! ऐसा मत कह। मैं धर्मबुद्धि हूँ। नाम के अनुसार ही मुझमें गुण है। मैं यह चोरी का कार्य नहीं करता।

इस प्रकार दोनों विवाद करते हुए न्यायालय में पहुँचे तथा दोनों ने एक दूसरे के विरुद्ध अभियोग चलाया। न्यायाधीश ने कहा—खौलते तेल से जिसका शरीर नहीं जलेगा वह सच्चा है तथा जिसका शरीर जल जायगा वह चोर है। पापबुद्धि ने कहा—विवाद में लिखित पत्र देखा जाता है, उसके अभाव में साक्षी ढूँढ़े जाते हैं। जब कोई साक्षी नहीं मिलता तब इस प्रकार से निर्णय किया जाता है। इस घटना में वृक्षदेवता हमारे साक्षी हैं। वही हम दोनों में से एक को चोर या सच्चा बतायेंगे। यह सुनकर न्यायाधीश ने कहा—आपने ठीक कहा। हम भी इस कौतूहल को देखना चाहते हैं। अतः आप दोनों हमारे साथ कल प्रातः-काल उस वन में चलें। जब सब लोग अपने-अपने घर चले गये तब पापबुद्धि ने अपने पिता से कहा—हे पिताजी! मैंने धर्मबुद्धि का बहुत अधिक धन चुरा लिया है। वह धन आपकी बात से पच सकता है। अन्यथा वह धन तो जायगा ही हमारा प्राण भी चला जायगा। वह बोला—पुत्र, शीघ्र कहो जिसे कहकर मैं उस धन की तथा तुम्हारे प्राण की रक्षा करूँ। पापबुद्धि ने कहा—पिताजी, उस जङ्गल में एक विशाल शमी का वृक्ष है जिसमें बड़ा सा कोटर (खोखला छेद) है। आप इसी समय उसमें घुस जाइये। जब प्रातःकाल मैं साक्षी के लिए कहूँगा तब आप कहिएगा—धर्मबुद्धि चोर है, धर्मबुद्धि चोर है। उसके पिता ने ऐसा ही किया। प्रातःकाल पापबुद्धि धर्मबुद्धि तथा न्यायाधीश के साथ उस शमी वृक्ष के पास जाकर जोर से बोला—हे वनदेवता! हम दोनों के बीच में जो चोर हो उसे बताओ। तब शमी वृक्ष के कोटर में बैठा हुआ पापबुद्धि का पिता बोला—अरे सुनो, सुनो। धर्मबुद्धि ने यह धन चुराया है, अन्य किसी ने नहीं। यह सुनकर वहाँ के सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये तथा प्रसन्न भी हुए। न्यायाधीश ने धर्मबुद्धि को जब तक दण्ड देने की तैयारी की

तब तक धर्मबुद्धि ने उस शमीकोटर को लकड़ियों से घेरकर जला दिया । जब वह वृक्ष जलने लगा उसी समय उसमें से पापबुद्धि का पिता रोता-चिल्लाता हुआ निकला । उसका आधा शरीर जल गया था तथा आँखें भी फूट गई थीं । उसे इस दशा में देखकर सब लोग और भी आश्चर्य में पड़ गये । उन्होंने पूछा—यह कैसी घटना है । उसने किसी भाँति अस्फुट स्वर में पापबुद्धि का वृत्तान्त कह सुनाया तथा तुरन्त ही मर गया । न्यायाधीश ने पापबुद्धि को उसी प्रज्वलित अग्नि में फेंकवा दिया तथा धर्मबुद्धि की प्रशंसा की ।

धर्मबुद्धिः कुबुद्धिश्च द्वावेतौ विदितौ मम ।
पुत्रेण व्यर्थपाण्डित्यात् पिता धूमेन घातितः ॥

अर्थात्—धर्मबुद्धि और कुबुद्धि यह दोनों मुझे अच्छी प्रकार विदित हैं । पापबुद्धि ने व्यर्थ की विद्वत्ता अर्थात् चालाकी दिखाकर अपने पिता को अग्नि में फुँकवा दिया तथा स्वयं भी उसी में जलकर मरने के लिए बाध्य हुआ ।

पैंतालीसवीं कथा

मूर्ख कछुवा

सुहृदां हितकामानां न करोतीह यो वचः।
स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठाद्भ्रष्टो विनश्यति ॥

अर्थात्—शुभचिन्तक मित्रों की बात जो नहीं मानता है वह दुर्बुद्धि नष्ट हो जाता है जैसे काष्ठ से गिर कर कछुवा नष्ट हो गया।

किसी सरोवर में एक कछुवा रहता था। उसका नाम था कम्बुग्रीव। दो हंस पक्षी उसके परम मित्र थे। उनका नाम था संकट तथा विकट। वे सब तालाब के तट पर दिन भर कछुवे के साथ प्रेमपूर्वक अनेक देवता, ऋषि तथा महर्षियों की कथा कहते थे तथा संध्या समय अपने घोंसले में चले जाते थे। कुछ दिनों के पश्चात् वर्षा की कमी के कारण वह तालाब धीरे-धीरे सूख गया। अतः कछुवे के दुख से दुखित होकर उन दोनों हंसों ने कहा—हे मित्र! इस तालाब में केवल सेवार तथा कीचड़ शेष रह गया है। अब आपका निर्वाह किस प्रकार होगा। हमारे हृदय में इसकी बड़ी चिन्ता है। यह सुनकर कछुवे ने कहा—यद्यपि जल के बिना मेरा जीवन दुर्लभ है तथापि कोई उपाय सोचना चाहिए। क्योंकि—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले धैर्यात्कदाचिद्गतिमाप्नुयात्सः।
यथा समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥

अर्थात्—प्राणसंकट के समय में भी धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। धैर्य धारण करने से सम्भवतः उसका उद्धार हो जाता है। जैसे समुद्र में जहाज के टकरा जाने या टूट फूट कर नष्ट हो जाने पर समुद्री यात्री तैरकर पार जाना ही चाहते हैं डूबकर मरना नहीं।

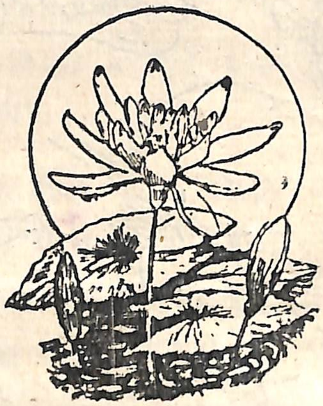
आप लोग पर्याप्त जल से भरा हुआ कोई जलाशय ढूँढ़िये तथा एक दृढ़ रस्सी या छोटी सी लकड़ी ले आइये। उसके दोनों सिरे को आप लोग चोंच में पकड़ लीजिएगा और

बीच में मैं दाँतों से दृढ़तापूर्वक पकड़ लूँगा। इस प्रकार आप लोग मुझे लेकर उस जलाशय में उड़ जाइयेगा। उन दोनों हंसों ने कहा—हे मित्र! हम ऐसा ही करेंगे किन्तु आप चुप रहियेगा, अन्यथा आप गिर पड़ेंगे और मर जायेंगे। कछुवे ने स्वीकार कर लिया।



दोनों हंस कछुवे को उपरोक्त विधि से लिये हुए आकाशमार्ग से उड़ते हुए जा रहे थे। मार्ग में नीचे एक नगर दिखाई पड़ा। वहाँ के नगरनिवासियों ने इस प्रकार कछुवे को लेकर उड़ते हुए हंस को देखकर आश्चर्य के साथ चिल्लाना आरम्भ किया—अरे देखो

देखो ! पहिये की भाँति कोई गोल वस्तु लिए हुए दो हंस उड़े जा रहे हैं। उनके कोलाहल को सुनकर कम्बुग्रीव कछुवे से न रहा गया। वह बोल उठा—अरे क्यों कोलाहल करते हो। किन्तु आधी बात मुख से निकलते ही वह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा पुरवासियों ने उसे टुकड़े टुकड़े कर डाला।



नवयुग बाल-साहित्यमाला

उपहार देने के लिए, सहायक पुस्तकों के रूप में पढ़ाने के लिए

तथा

सामाजिक शिक्षा के अंतर्गत पठन-पाठन के लिए

सचित्र, सर्वोत्तम २० पुस्तकों का पुस्तकालय

लेखक—श्री लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, एम० ए०

(१) नल-दमयन्ती	।=)	(१०) बाल-महाभारत	[illegible]
(२) सावित्री-सत्यवान	।)	(११) महारानी पद्मिनी	[illegible]
(३) देश-देश की कहानियाँ भाग १	।।)	(१२) बाल-गंगावतरण	।।)
(४) देश-देश की कहानियाँ भाग २	।।)	(१३) बाल-शेक्सपियर	।[illegible]
(५) बाल-हितोपदेश	।=)	(१४) बाल-कादंबरी	।।)
(६) बाल-शकुंतला	।)	(१५) हमारे जवाहरलाल नेहरू	२।।)
(७) बाल-जयद्रथवध	।)	(१६) सुबोध पंचतंत्र—प्रथम भाग	१।।)
(८) बाल-सुदामाचरित	।=)	(१७) सुबोध शाकुंतल	।।।)
(९) बाल-हरिश्चन्द्र	।।)	(१८) सुबोध पंचतंत्र—द्वितीय भाग	१।।)

(१९) बाल-रामायण

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी का अमर काव्य इस पुस्तक में सरल करके सम्पादित किया गया है। इसकी विशेषता इस बात में है कि गद्य में रामायण [illegible] कथा के अंतर्गत मूल दोहे-चौपाइयों के २५ चुनाव इस प्रकार रक्खे गये हैं कि कथा का [illegible] भी बना रहता है और रामायण की मूल भाषा से भी बालकों का सहज ही में परि[illegible] जाता है। बड़ा साइज मूल्य ३) तीन रुपया।

(२०) बाल-रवीन्द्र

कवि-सम्राट् स्वर्गीय श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की चार सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ स[illegible] में पुनर्कथित हैं। प्रत्येक कहानी में चित्र हैं और साथ में कवीन्द्र रवीन्द्र का संक्षिप्त परिचय भी। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

पूरे सेट का मूल्य केवल १६ रु० ८ आ०